पूर्णिमा-व्रतधारियों के लिए पूर्णिमा का दिन किसी महापर्व से कम नहीं होता। क्यों न हो; प्रसन्नता, माधुर्य और आत्मसुख का सिंधु जो उमड़ता है बापूजी के सान्निध्य में ! – रक्षाबंधन व पूर्णिमा-दर्शन महोत्सव, गोधरा (गुज.).

यह दृश्य किसी बड़े शहर का नहीं, गुजरात के अमदावाद जिले की एक छोटी-सी तहसील धोलका का है। इसे देखकर लगता है मानों, वहाँ के हर घर के लोग सत्संग सुनने आये हों।

लाखों की संख्या, फिर भी आत्यंतिक शांति... पूज्यश्री के सत्संग में जीवन के किसी गूढ़ रहस्य का विवेचन सुनने में मग्न अहमदनगर (महा.) के सत्संगी।

ऋषि प्रसाद

वर्ष : १५ अंक : १४२
अक्टूबर २००४ मूल्यः रु. ६-००
आश्विन-कार्तिक, वि.सं.२०६१

सदस्यता शुल्क

भारत में

(१) वार्षिक	: रु. ५५/-
(२) द्विवार्षिक	: रु. १००/-
(३) पंचवार्षिक	: रु. २००/-
(४) आजीवन	: रु. ५००/-

नेपाल, भूटान व पाकिस्तान में

(१) वार्षिक	: रु. ८०/-
(२) द्विवार्षिक	: रु. १५०/-
(३) पंचवार्षिक	: रु. ३००/-
(४) आजीवन	: रु. ७५०/-

विदेशों में

(१) वार्षिक	: US $ 20
(२) द्विवार्षिक	: US $ 40
(३) पंचवार्षिक	: US $ 80
(४) आजीवन	: US $ 200

कार्यालय **'ऋषि प्रसाद'** श्री योग वेदांत सेवा समिति, संत श्री आसारामजी आश्रम, संत श्री आसारामजी बापू आश्रम मार्ग, अमदावाद-३८०००५.
फोन : (०७९) २७५०५०१०-११.
e-mail : ashramindia@ashram.org
web-site : www.ashram.org

स्वामी : संत श्री आसारामजी आश्रम
प्रकाशक और मुद्रक : श्री कौशिक वाणी
प्रकाशन स्थल : श्री योग वेदांत सेवा समिति, संत श्री आसारामजी आश्रम, संत श्री आसारामजी बापू आश्रम मार्ग, अमदावाद-५.
मुद्रण स्थल : हार्दिक वेबप्रिंट, राणीप और विनय प्रिंटिंग प्रेस, अमदावाद।
सम्पादक : श्री कौशिक वाणी
सहसम्पादक : डॉ. प्रे. खो. मकवाणा

'ऋषि प्रसाद' के सदस्यों से निवेदन है कि कार्यालय के साथ पत्र-व्यवहार करते समय अपना रसीद क्रमांक अथवा सदस्यता क्रमांक अवश्य लिखें।

अनुक्रम

शाश्वत मंगलमय दिवाली

ज्योत से ज्योत जगायें सद्गुरु, मिटे असत् अँधियारा।
अलख का दीप जगे उर-अंतर, जगमग जीवन सारा॥
अहं की जब दीवाल हटे, तब ही सच्ची दिवाली है।
लग जाओ गुरु-चरणों में, बस घड़ी वो आनेवाली है॥
'श्रीगणेश' दिवाली का हो, उर में ज्ञान की ज्योति जगे।
गुरुवर कृपा करो अब ऐसी, जीवन का सब तमस् भगे॥
फोड़ें पटाखें अहं के अब, श्रद्धा के दीप जलायें हम।
गुरु-ज्ञान मिठाई की सुगंध, सेवा से जग महकायें हम॥
नकली फुलझड़ियाँ बहुत जलीं, असली आनंद जगायें हम।
अंतरतम दीप प्रकटाकर, सच्ची दिवाली मनायें हम॥
चिंता चरखी, अहं पटाखा, मिथ्या ज्ञान की फुलझड़ियाँ।
ईर्ष्या के अनार विषयों की, रजस्-तमस् लट्टू-लड़ियाँ॥
असत् अँधेरा दूर न होगा, ये पल में बुझनेवालीं।
ज्ञान की ज्योत जगाओ प्रिय ! शाश्वत मंगलमय दिवाली !!

जल्दी करो...

आओ जल्दी करो आगे बढ़ते चलो।
छोड़कर वक्त आगे निकल जायेगा॥
कल पे टालोगे तो आज-कल करते ही।
हाथ से ये मौका भी फिसल जायेगा॥
हैं अभी खेलने और खाने के दिन।
है जवानी तो हैं लुत्फ उठाने के दिन॥
जब ढलेगा बदन तब करेंगे भजन।
इस भरम में ही आयेगा जाने का दिन॥
शक्ति ही जब न होगी तो क्या भक्ति हो।
जब बुढ़ापे में यौवन बदल जायेगा॥
वक्त रहते सँभल जाओ यारो सुनो।
छोड़ हीरा नहीं काँच-पत्थर चुनो॥
चिड़ियाँ चुग जायेंगी उम्र की खेतियाँ।
ऐसा न हो कि सिर बाद में फिर धुनो॥
सुख ही सुख आयेगा तेरी झोली में जब।
प्रभु के साँचे में दिल तेरा ढल जायेगा॥
आके देखो तो इक बार दरबार में।
भावना से भरे प्रेम संसार में॥
सर झुकाओगे तो ऊँचे उठ जाओगे।
जीत ऐसी अनोखी है इस हार में॥
जिस घड़ी होगी उसकी निगाहें करम।
एक पल में ये जीवन बदल जायेगा॥

- 'चाँद' लखनवी, लखनऊ.

*

ऐ मानव ! फरियाद न कर...

ऐ मानव ! फरियाद न कर।
अपने स्वरूप को याद तो कर॥
सोया रहा गाफिल अविद्या में,
खोया रहा सुख-सुविधा में।
उलझ रहा दुःख-दुविधा में,
हर्ष-शोक-विषाद न कर॥
जीवन दो दिन का मेला है,
तू राही एक अकेला है।
जग सारा एक झमेला है,
क्षण-क्षण यूँ बरबाद न कर॥
तन तार जोड़ विश्वेश्वर से,
निज प्रीति बढ़ा परमेश्वर से।
इक लगन लगा सर्वेश्वर से,
बीता हुआ कल याद न कर॥
संसार ये सारा सपना है,
इक ईश्वर साथी अपना है।
'साक्षी' नश्वर जग मिटना है,
अहं से दिल मलिन न कर॥

- श्रीमती जानकी चंदनानी, अमदावाद.

आश्रम-निवास विषयक सूचना

यदि आप आश्रम-निवास के लिए आना चाहते हैं (चाहे एक रात के लिए या लंबे समय के लिए) तो अनिवार्य रूप से अपने आगमन और प्रस्थान की तिथियों की सूचना हमें पर्याप्त समय पूर्व दें और यहाँ से अनुमति मिलने पर अनुमति-पत्र साथ लेकर ही आयें।

बिना पूर्व अनुमति के आवास की सुविधा उपलब्ध होना सुनिश्चित नहीं है।

प्रश्न : प्रातःस्मरणीय बापूजी ! संसार की इच्छाएँ कैसे छूटें ?

पूज्य बापूजी : इच्छाओं को मिटाने के लिए सतत मन का निरीक्षण करते रहो। उसे तुच्छ विषय-विकारों की ओर जाने से रोकते रहो। जैसे पंखा घूमता है किंतु यदि आप उसका बटन बंद कर दें, उसका विद्युत-संपर्क काट दें तो पंखे का घूमना कब तक जारी रहेगा ? ऐसे ही आप मन के साथ अपना सम्बंध काट दोगे तो विकारी इच्छाएँ-वासनाएँ भी आप पर कोई प्रभाव नहीं डाल सकेंगी। आप जब वासनापूर्ति के लिए मन को सत्ता देते हो तभी इच्छाएँ-वासनाएँ आपको दबाती हैं। मन को सत्ता देने से, स्वीकृति देने से ऐहिक जगत के नश्वर भोग आप पर हावी हो जाते हैं, जबकि मन के द्रष्टा बनने से आपकी जीत हो जाती है।

प्रश्न : प्यारे सद्गुरुदेव ! किन सद्गुणों से युक्त साधक द्रुतगति से साधना-मार्ग में आगे बढ़ता है ?

पूज्य बापूजी : साधन में प्रेम होना, साधन में जरा भी परिश्रम प्रतीत न होना, महापुरुषों में श्रद्धा होना और भगवान पर विश्वास होना - इन चार सद्गुणों से संपन्न साधक द्रुतगति से अपने साधना-मार्ग में आगे बढ़ता है।

प्रश्न : मंगलमूर्ति बापूजी ! साधक साधना में शीघ्र प्रगति कैसे कर सकता है ?

पूज्य बापूजी : साधक अपने ऊँचे उद्देश्य की स्मृति बनाये रखे, व्यर्थ की बातों में अपना समय न गँवाये और जो कार्य करे उसे तत्परता से पूर्ण करे। कर्म तो करे लेकिन कर्तापन का गर्व न आये और लापरवाही से कर्म बिगड़े नहीं इसकी सावधानी रखे। जीवन में

हृदय की विशालता से ही वैश्विक एकता संभव

प्रश्न : लोकमांगल्य के धनी गुरुदेवश्री ! सेवा का हेतु क्या है ?

पूज्य बापूजी : सेवा का हेतु है - चित्त की शुद्धि; अहंकार, द्वेष, ईर्ष्या, घृणा आदि कुभावों की निवृत्ति और भेदभाव की समाप्ति। इससे जीवन का दृष्टिकोण एवं कर्मक्षेत्र विशाल होगा, हृदय उदार होगा, सुषुप्त शक्तियाँ जागृत होंगी, विश्वात्मा के साथ एकता के आनंद की झलकें मिलने लगेंगी, **'सबमें एक और एक में सब'** की अनुभूति होगी। इसी भावना के विकास से राष्ट्रों में एकता आ सकती है, समाजों को जोड़ा जा सकता है, भ्रष्टाचार की विशाल दीवार को गिराया जा सकता है। हृदय की विशालता द्वारा ही वैश्विक एकता को स्थापित किया जा सकता है तथा अखूट आनंद के असीम राज्य में प्रवेश पाकर मनुष्य-जन्म सार्थक किया जा सकता है।

केवल ईश्वर को ही महत्त्व दे। व्यवहार पवित्र बनाये रखे। - इन बातों को अपने जीवन में अपनानेवाला साधक अपने ऊँचे लक्ष्य को पाने में अवश्य कामयाब हो जाता है। इस ऊँचाई से बढ़कर त्रिभुवन में और कोई ऊँचाई नहीं है। जिस अनुभव में ब्रह्मा-विष्णु-महेश परितृप्त हैं, जिसके आगे इन्द्र का राज-वैभव भी तुच्छ है उसी आत्मानुभव को वह प्राप्त कर सकता है।

प्रश्न : शास्त्रमर्मज्ञ गुरुदेव ! जीवन में ऐसा क्या करें कि परमात्म-प्रेम बढ़े ?

पूज्य बापूजी : सदैव भगवच्चरित्र का श्रवण करो। महापुरुषों की जीवन-गाथाएँ, ज्ञान की गाथाएँ सुनो या पढ़ो। इससे भक्ति बढ़ेगी तथा परमात्म-ज्ञान एवं वैराग्य बढ़ाने में मदद मिलेगी। भगवान की स्तुति-भजन गाओ या सुनो। अकेले बैठो तब भजन गुनगुनाओ। अन्यथा मन खाली रहेगा तो उसमें काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर - ये विकार आ जायेंगे। कहा भी गया है कि **'खाली दिमाग, शैतान का घर।'**

जब परस्पर मिलो तब परमेश्वर की, परमेश्वर-प्राप्त महापुरुषों की चर्चा करो। प्रभु की स्मृति करते-करते चित्त को आनंदित करने की आदत डाल दो।

प्रश्न : कृपया यह बताइये कि स्वस्थ, सुखी एवं सम्मानित जीवन जीने के लिए क्या करें ?

पूज्य बापूजी : स्वस्थ जीवन जीने के लिए योग के जानकार महापुरुष के सान्निध्य में जाकर उनसे यौगिक प्रयोग सीखें और करें। सुखी जीवन के लिए ध्यानयोग द्वारा आत्मसुख पायें। सम्मानित जीवन जीने के लिए दूसरों को मान दें, सर्वहित के कार्य करें।

प्रश्न : स्वरूपनिष्ठ बापूजी ! महाशय किसे कहा जाता है ?

पूज्य बापूजी : जिसके जीवन का आशय (उद्देश्य) महान हो, उसे 'महाशय' कहा जाता है। महान आशय है अपने जीवन-तत्त्व को जानना। जो अपने चित्त पर किसी भी प्रकार की इच्छा-वासना की रेखा न खींचे अथवा पहले से खींची हुई रेखा को जिसने हटा दिया है, वह महाशय है। ऐसा महाशय ही समस्त दृश्य जगत को कल्पनामात्र मानकर ब्रह्मरूप में स्थित होता है।

प्रश्न : ब्रह्मनिष्ठ बापूजी ! सत्कर्म से भी सत्संग श्रेष्ठ क्यों कहा गया है ?

पूज्य बापूजी : दूसरों के दुःख की निवृत्ति के लिए उन्हें ऐहिक साधन देना-दिलाना अच्छा है लेकिन इससे भी बढ़िया तो यह है कि उनको आत्मानुभव से तृप्त संत-महापुरुषों का सत्संग-लाभ दिलाना।

स्वामी विवेकानंद कहते थे : ''तुम किसी भूखे को भोजन कराते हो, प्यासे को पानी पिलाते हो, किसीको अच्छे रास्ते लगाते हो, किसी हारे हुए में हिम्मत भरते हो, यह परोपकार तो है, बढ़िया तो है लेकिन इससे भी श्रेष्ठ है किसीको सत्संग देना-दिलाना और सत्संग दिलाने में भागीदार होना। जो किसीको सत्संग देने-दिलाने में भागीदार होता है वह मानव-जाति का परम हितैषी है, क्योंकि सदा के लिए सब दुःखों की निवृत्ति भगवत्तत्त्व के ज्ञान एवं भगवत्स्वरूप के ध्यान से ही संभव है।''

आप भगवत्कथा का श्रवण स्वयं तो करें ही, साथ ही अन्य लोगों को भी उसमें सम्मिलित करें ताकि सब भगवत्कथा के श्रवण-मनन द्वारा दुःखों से विनिर्मुक्त होकर अपने जीवन को दिव्य बना सकें। यही श्रेष्ठ कर्म है, यही श्रेष्ठ धर्म है और यह सत्स्वरूप ईश्वर में टिकानेवाला कर्म ही सत्कर्म है।

प्रश्न : आत्मानंद में मस्त प्यारे सद्गुरुदेव ! गुरु और सद्गुरु में क्या अंतर है ?

पूज्य बापूजी : गुरु उन्हें कहते हैं जिनसे मनुष्य कोई ऐसी नयी बात सीखे, जिसे वह नहीं जानता, इसीलिए मनुष्य उन सभीको गुरु मान सकता है जिनसे उसे कुछ सीखने को मिले। अवधूतजी (दत्तात्रेय) ने इसी दृष्टि से चौबीस गुरु बनाये थे।

सद्गुरु इन सारे गुरुओं से विलक्षण होते हैं। वे सत्स्वरूप परमात्मा के पथ को जानते हैं। इसलिए बुद्धिमान मनुष्य उन सद्गुरु को परम गुरु मानकर सब कुछ उनके चरणों पर न्योछावर कर देता है, क्योंकि वह उनसे ऐसी चीज पाता है जिसके सामने संसार की सभी चीजें, सभी स्थितियाँ बहुत ही कम कीमत की, अत्यंत तुच्छ, बहुत ही छोटी रह जाती हैं।

सद्गुरु ही गोविंद से मिलाते हैं, वे ही शिष्य के दुःखों का पूर्णतया हरण करते हैं इसीलिए शिष्य की

दृष्टि में सद्गुरु ईश्वर से बढ़कर सेव्य हैं। इसीसे शास्त्रों एवं संतों ने सद्गुरु की खूब महिमा गायी है और सद्गुरु की शरणागति के बिना भगवान की प्राप्ति को अति दुर्लभ व असंभव कहा है।

प्रश्न : मानव-जीवन में सत्संग की महत्ता समझाने की कृपा कीजिये।

पूज्य बापूजी : सत् अर्थात् परमात्मा और संग अर्थात् सान्निध्य-सेवन । सत्संग यानी परमात्म-सान्निध्य से लाभान्वित होना, उसकी अनुभूति करना।

जो सत्संग नहीं करता वह कुसंग अवश्य करता है। जो सत्कर्म नहीं करता, वह कुकर्म अवश्य करता है और जो ईश्वरपरायण जीवन नहीं बिताता वह शैतान-सा जीवन अवश्य गुजारता है। जिसको अपने जीवन के मूल्य का पता है वह सत्संग का महत्त्व जानता है। जिसे अपने जीवन के मूल्य का पता नहीं, वह सत्संग का मूल्य नहीं समझता।

जो सत्संग में आते हैं वे नश्वर संसार से प्रीति हटाकर परमात्मा में प्रीति बढ़ाने की रीति जान लेते हैं। वे संसार के शोक-क्षोभ से प्रभावित नहीं होते, उनसे अछूते रह जाते हैं। सत्संग स्वभाव बदलने की कुंजी है। सत्संगी की सूझबूझ, विवेक और सावधानी बढ़ जाती है, चिंताएँ कम हो जाती हैं, चित्त निरहंकार एवं निर्मोही होकर सद्गुणों से संपन्न होने लगता है, हृदय में आनंद की अनुभूति होने लगती है और आंतरिक जीवन सुखमय होने लगता है।

प्रिय जिज्ञासु पाठक बंधुओ,

हमारे पुराणों-सत्शास्त्रों आदि का प्रणयन प्रश्नोत्तर के माध्यम से ही हुआ है। संसार के सर्वश्रेष्ठ ग्रंथ 'श्रीमद्भगवद्गीता' का आविर्भाव अर्जुन के प्रश्नों और भगवान श्रीकृष्ण के उत्तरों से ही हुआ है।

लोकमांगल्य की भावना से युक्त, धर्म, नीति, अध्यात्म अथवा व्यवहार सम्बंधी प्रश्न आप हमें सहर्ष प्रेषित कर सकते हैं। योग्य और बहुसंख्यक लोगों के लिए उपयोगी पाये जाने पर उन्हें इस स्तंभ में उत्तर के साथ प्रकाशित किया जायेगा।

(नोट : कृपया इस स्तंभ के लिए व्यक्तिगत प्रश्न लिखने का कष्ट न करें।)

श्रद्धा और अंधश्रद्धा

[पूना (महा.) में १९ सितंबर २००४ को पूज्य बापूजी के श्रीमुख से निःसृत सत्संग-अमृत]

भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं : **न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते ।** 'इस संसार में ज्ञान के समान पवित्र करनेवाला निःसंदेह कुछ भी नहीं है।' **(गीता ४.३८)** गंगाजी पवित्र करती हैं, तीर्थ व दान-पुण्य पवित्र करते हैं, महापुरुषों का दर्शन-सत्संग पवित्र करता है... लेकिन पवित्र करनेवाले इन साधनों को भी भगवद्ज्ञान पवित्र करता है।

वह ज्ञान किसे मिलता है ? भगवान कहते हैं : **श्रद्धावाँल्लभते ज्ञानं...** श्रद्धालु मनुष्य को परमात्म-तत्त्व का ज्ञान प्राप्त होता है। जो था, है और रहेगा (परमात्मा) और जो नहीं था, नहीं है और नहीं रहेगा (जगत) - दोनों का रहस्य, ज्ञान उसके हृदय में प्रकट हो जाता है।

शरीर पहले नहीं था, सुख-दुःख पहले नहीं था, चिंता भी पहले नहीं थी किंतु इन सबको जाननेवाला पहले था। बचपन में शरीर छोटा था और अब वैसा नहीं है किंतु इसको जाननेवाला पहले था, अभी है और बाद में भी रहेगा। यह ज्ञान मिलता है सत्संग से परंतु सत्संग सुननेवाला व्यक्ति श्रद्धावान होना चाहिए।

कुछ लोग कहते हैं कि 'श्रद्धा की क्या जरूरत है ? हम श्रद्धा को नहीं मानते। हम वटसावित्री व्रत आदि को नहीं मानते। हम पहले देखेंगे, विज्ञान से प्रमाणित करेंगे फिर मानेंगे।' तो देखो भाई ! जो देखने का विषय है उसमें श्रद्धा नहीं करनी पड़ती।

दृष्टि में सद्गुरु ईश्वर से बढ़कर सेव्य हैं। इसीसे शास्त्रों एवं संतों ने सद्गुरु की खूब महिमा गायी है और सद्गुरु की शरणागति के बिना भगवान की प्राप्ति को अति दुर्लभ व असंभव कहा है।

प्रश्न : मानव-जीवन में सत्संग की महत्ता समझाने की कृपा कीजिये।

पूज्य बापूजी : सत् अर्थात् परमात्मा और संग अर्थात् सान्निध्य-सेवन । सत्संग यानी परमात्म-सान्निध्य से लाभान्वित होना, उसकी अनुभूति करना।

जो सत्संग नहीं करता वह कुसंग अवश्य करता है। जो सत्कर्म नहीं करता, वह कुकर्म अवश्य करता है और जो ईश्वरपरायण जीवन नहीं बिताता वह शैतान-सा जीवन अवश्य गुजारता है। जिसको अपने जीवन के मूल्य का पता है वह सत्संग का महत्त्व जानता है। जिसे अपने जीवन के मूल्य का पता नहीं, वह सत्संग का मूल्य नहीं समझता।

जो सत्संग में आते हैं वे नश्वर संसार से प्रीति हटाकर परमात्मा में प्रीति बढ़ाने की रीति जान लेते हैं। वे संसार के शोक-क्षोभ से प्रभावित नहीं होते, उनसे अछूते रह जाते हैं। सत्संग स्वभाव बदलने की कुंजी है। सत्संगी की सूझबूझ, विवेक और सावधानी बढ़ जाती है, चिंताएँ कम हो जाती हैं, चित्त निरहंकार एवं निर्मोही होकर सद्गुणों से संपन्न होने लगता है, हृदय में आनंद की अनुभूति होने लगती है और आंतरिक जीवन सुखमय होने लगता है।

प्रिय जिज्ञासु पाठक बंधुओ,

हमारे पुराणों-सत्शास्त्रों आदि का प्रणयन प्रश्नोत्तर के माध्यम से ही हुआ है। संसार के सर्वश्रेष्ठ ग्रंथ 'श्रीमद्भगवद्गीता' का आविर्भाव अर्जुन के प्रश्नों और भगवान श्रीकृष्ण के उत्तरों से ही हुआ है।

लोकमांगल्य की भावना से युक्त, धर्म, नीति, अध्यात्म अथवा व्यवहार सम्बंधी प्रश्न आप हमें सहर्ष प्रेषित कर सकते हैं। योग्य और बहुसंख्यक लोगों के लिए उपयोगी पाये जाने पर उन्हें इस स्तंभ में उत्तर के साथ प्रकाशित किया जायेगा।

(नोट : कृपया इस स्तंभ के लिए व्यक्तिगत प्रश्न लिखने का कष्ट न करें।)

श्रद्धा और अंधश्रद्धा

[पूना (महा.) में १९ सितंबर २००४ को पूज्य बापूजी के श्रीमुख से निःसृत सत्संग-अमृत]

भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं : **न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते।** 'इस संसार में ज्ञान के समान पवित्र करनेवाला निःसंदेह कुछ भी नहीं है।' **(गीता ४.३८)** गंगाजी पवित्र करती हैं, तीर्थ व दान-पुण्य पवित्र करते हैं, महापुरुषों का दर्शन-सत्संग पवित्र करता है... लेकिन पवित्र करनेवाले इन साधनों को भी भगवद्ज्ञान पवित्र करता है।

वह ज्ञान किसे मिलता है ? भगवान कहते हैं :

श्रद्धावाँल्लभते ज्ञानं... श्रद्धालु मनुष्य को परमात्म-तत्त्व का ज्ञान प्राप्त होता है। जो था, है और रहेगा (परमात्मा) और जो नहीं था, नहीं है और नहीं रहेगा (जगत) - दोनों का रहस्य, ज्ञान उसके हृदय में प्रकट हो जाता है।

शरीर पहले नहीं था, सुख-दुःख पहले नहीं था, चिंता भी पहले नहीं थी किंतु इन सबको जाननेवाला पहले था। बचपन में शरीर छोटा था और अब वैसा नहीं है किंतु इसको जाननेवाला पहले था, अभी है और बाद में भी रहेगा। यह ज्ञान मिलता है सत्संग से परंतु सत्संग सुननेवाला व्यक्ति श्रद्धावान होना चाहिए।

कुछ लोग कहते हैं कि 'श्रद्धा की क्या जरूरत है ? हम श्रद्धा को नहीं मानते। हम वटसावित्री व्रत आदि को नहीं मानते। हम पहले देखेंगे, विज्ञान से प्रमाणित करेंगे फिर मानेंगे।' तो देखो भाई ! जो देखने का विषय है उसमें श्रद्धा नहीं करनी पड़ती।

उसमें तो विवेक और विचार चाहिए। जो नहीं दिखता उसमें श्रद्धा करनी पड़ती है।

आचार्य विनोबा भावे कहते थे कि "क्या श्रद्धा ने ही अंध होने का ठेका लिया है ? 'अंधश्रद्धा' कहना यह महा अंधश्रद्धा है।" जो बोलते हैं 'अंधश्रद्धा-अंधश्रद्धा' उनसे पूछकर देखो कि तुमने बाप को देखकर माना है कि श्रद्धा से माना है ? अथवा विज्ञान से प्रमाणित किया है कि वह तुम्हारा बाप है ? तुमने कैसे माना ? वटसावित्री व्रत अंधश्रद्धा है तो तुम्हारे बाप को बाप मानना भी अंधश्रद्धा है।

पाठशाला में जो सीखा क... ख... ग... या ए... बी... सी... डी... वह श्रद्धा से माना कि विज्ञान से प्रमाणित किया कि 'ए' ऐसा क्यों है ? 'बी' ऐसा क्यों है ? इसका क्या प्रमाण है ? नहीं, मान लिया।

पहले मानते हैं फिर जानते हैं, इसको बोलते हैं **श्रद्धा** और पहले जानते हैं फिर मानते हैं, इसको बोलते हैं **विचार**। जो दिखता है उसके विश्लेषण हेतु विचार की जरूरत है लेकिन जिसकी सत्ता से देखा जाता है उसका ज्ञान पाने हेतु श्रद्धा ही चाहिए, दूसरा कोई उपाय नहीं है।

वेद में तो श्रद्धासूक्त है। जिसके दिल में श्रद्धा होती है उसके दिल में उम्मीदें होती हैं, बल होता है। सत्शास्त्रों व इष्ट में श्रद्धा से चित्त में रसीलापन आता है। जिसके जीवन में श्रद्धा है वही पढ़ाई कर सकता है, व्यापार-धंधा कर सकता है। विद्यालय में जब परीक्षा ली जाती है तब १००० विद्यार्थियों में से ८००-९०० ही पास होते हैं। फिर कोई सोचे कि 'जब ८००-९०० ही पास होनेवाले हैं तो १००० क्यों बिठाना, ८००-९०० ही बिठाओ।' नहीं, १००० के १००० विद्यार्थी श्रद्धा करके चलते हैं। उनमें से ८००-९०० पास हो जाते हैं और बाकी के विद्यार्थियों में जो थोड़ी कमी रह जाती है, उस कमी को दूर करके अगले साल वे भी पास हो जाते हैं। यहाँ भी श्रद्धा तो चाहिए।

श्रद्धा और अंधश्रद्धा का ठेका लेनेवालों को अपने ललाट पर गाय के घी से मालिश करनी चाहिए। अंधश्रद्धा तो यह है कि 'पान मसाला खायेंगे तो मजा आयेगा... शराब पीयेंगे तो मजा आयेगा, लोगों का शोषण करके विदेशों में पैसा जमा करेंगे तो सुख मिलेगा...' धन का संग्रह करके विदेशों में जमा करना, शराब पीकर, डिस्को करके अपने को सुखी मानना - यह अंधश्रद्धा है और वटसावित्री का व्रत करना, तीर्थ में जाना या भगवान व देवी-देवताओं को मानना यह अंधश्रद्धा नहीं, श्रद्धा ही है।

भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं :

अश्रद्दधानाः पुरुषा धर्मस्यास्य परंतप ।
अप्राप्य मां निवर्तन्ते मृत्युसंसारवर्त्मनि ॥

'हे परंतप ! (धर्मयुक्त साधन करने में बड़ा सुगम और अविनाशी है। मेरे द्वारा कहे गये इस) धर्म में श्रद्धारहित पुरुष मुझको न प्राप्त होकर मृत्युरूप संसारचक्र में भ्रमण करते रहते हैं।' **(गीता : ९.३)**

जो श्रद्धा नहीं रखते उन्हें अंदर की शांति, अंदर का सुख फिर शराब से लेना पड़ता है, लेडी और लेडे के डिस्को से लेना पड़ता है। इससे तो वारकरियों को धन्यवाद है कि 'विठ्ठला... विठ्ठला...' करके आनंदित होते हैं। जब डॉक्टर उपवास करने के लिए बोलते हैं तो वह मजबूरी हो जाती है लेकिन धर्म बोलता है कि वटसावित्री का व्रत करो, एकादशी का उपवास करो तो यह स्वास्थ्य के साथ साधना और संयम बढ़ाने की कुंजी बन जाता है। इससे शरीर, मन और बुद्धि की शुद्धि होती है और भगवत्प्राप्ति का मार्ग खुल जाता है। यह अंधश्रद्धा है कि वास्तविक श्रद्धा है ?

ऐसा कोई व्रत करनेवाला नहीं जिसको उससे फायदा न होता हो। व्रत से अपने में दृढ़ता आती है कि हम बिना पानी के, बिना खाये रह सकते हैं। व्रत से श्रद्धा बढ़ती है, फिर श्रद्धा से सत्य तक की प्राप्ति हो जाती है।

श्रद्धावान को वह ज्ञान मिल जाता है जिसे पाने के बाद कोई दुःख टिक नहीं सकता। जो सारी दुनिया की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय का कारण है, उस परमात्मा का ज्ञान मरने से पहले हो सकता है। ज्ञानेश्वर महाराज, तुकाराम महाराज ज्ञान की निधि थे। समर्थ रामदास, एकनाथ महाराज, जीजाबाई आदि महानता को प्राप्त हुए तो क्या बिना श्रद्धा के हुए ? अगर श्रद्धा नहीं होती तो शराब पीते, डिस्को आदि करते।

अभी किरलियन फोटोग्राफी निकली है जिसके द्वारा आपके शरीर की आभा का फोटो निकलता है। जो पापी हैं, कामी हैं, क्रोधी हैं, उनकी आभा हीन प्रकार की होती है और जो श्रद्धालु हैं, भगवद्भक्त हैं, ध्यान-भजन करते हैं उनकी आभा साफ, सफेद रंग की, प्रकाशमय एवं तेजोमय होती है। देवी-देवताओं और महापुरुषों के चित्रों में उनके मस्तक के पीछे जो गोल आभामंडल दिखाया जाता है वह ऐसे ही नहीं है।

कुछ लोग कहते हैं कि 'हम देवी-देवताओं को नहीं मानते।' लेकिन अपने बॉस को तो मानते हैं ? ऐसा करने से सुख होगा और ऐसा करने से दुःख होगा यह तो मानते हैं ? इस प्रकार सब कहीं-न-कहीं श्रद्धा करते ही हैं।

व्यवहार में भी कई जगह श्रद्धा करनी ही पड़ती है। बस के ड्राइवर पर श्रद्धा करते हैं कि यह हमको बद्रीनाथ पहुँचा देगा, हालाँकि कई ड्राइवर बद्रीनाथ या कहीं पहुँचाने के पहले ही मौत के घाट पहुँचा देते हैं एक्सीडेंट करके ! फिर भी ड्राइवर पर श्रद्धा करनी ही पड़ती है।

पायलट पर भी श्रद्धा करनी ही पड़ती है। पायलट भक्त नहीं होता, संत ज्ञानेश्वर या संत तुकाराम भी नहीं होता, वह तो हमारे सामने ही प्रेमिकाओं के साथ हँसता-खेलता है। ऐसे पायलट पर भी हमारे जैसे साधु बाबा को श्रद्धा करनी पड़ती है।

अब यहाँ से उठाकर वहाँ रखनेवाले पायलट पर श्रद्धा करनी पड़ती है तो चौरासी का चक्कर मिटाकर परमात्मा से मिलानेवाले व्रत, उपवास और नियम पर श्रद्धा नहीं करें तो क्या करें भाई ? व्रत, उपवास, नियम आदि के प्रति समाज की श्रद्धा को 'अंधश्रद्धा' कहनेवालों की बातों में आकर तो लोग उनके जैसे ही अशांत हो जायेंगे, नास्तिक हो जायेंगे।

जो लोग पवित्र श्रद्धा को भी 'अंधश्रद्धा' बोल रहे हैं, उनसे हम हाथ जोड़कर प्रार्थना करते हैं कि जरा बता दें उन्होंने अपने बाप को देखकर माना है कि अंधश्रद्धा से ? आप फलानी जाति के हैं यह देखकर माना है कि अंधश्रद्धा से ? क्या आपके ललाट पर लिखा है ? सुन-सुनकर ही आपने माना कि आप फलानी जाति के हो। सुन-सुनकर ही माना कि यह मेरा बाप है, यह मेरा चाचा है, यह मेरी दादी है, ये मेरे दादा हैं, यह मेरा देश है...

लोकमान्य तिलक, गाँधीजी और बड़े-बड़े संतों ने तो 'श्रीमद्भगवद्गीता' से फायदा उठाया ही, किंतु विदेशों के तत्त्वचिंतकों ने भी उससे बड़ा फायदा उठाया है। महात्मा थोरो, जिन्हें इमर्सन अपना गुरु मानते थे, वे कहते हैं कि ''प्राचीन युग की सर्व रमणीय वस्तुओं में गीता से श्रेष्ठ कोई वस्तु नहीं है। गीता के साथ तुलना करने पर जगत का समस्त आधुनिक ज्ञान मुझे तुच्छ लगता है। मैं नित्य प्रातःकाल अपने हृदय और बुद्धि को गीतारूपी पवित्र जल में स्नान कराता हूँ।''

श्रद्धा को 'अंधश्रद्धा' कहनेवालो ! हम आपसे हाथ जोड़कर प्रार्थना करते हैं कि श्रद्धा ने अंधा होने का ठेका नहीं लिया है। श्रद्धालुओं को अंधश्रद्धालु बोलने का पाप मत करो।

डॉ. मेकनिकल कहते हैं कि ''भारतवर्ष के धर्म में 'गीता' बुद्धि की प्रखरता, आचार की उत्कृष्टता एवं धार्मिक उत्साह का एक अपूर्व मिश्रण उपस्थित करती है। 'गीता' सच्ची शांति एवं सच्चा सुख प्रदान करती है।''

मैं तो 'अंधश्रद्धा उन्मूलन कानून' बनानेवालों को सलाह देता हूँ कि वे मदनमोहन मालवीयजी की यह बात याद रखें।

पंडित नेहरू के कंधे पर हाथ रखकर मालवीयजी बोले : ''नेहरू ! देखो, भारत एक धर्मप्रधान देश है। यहाँ (इलाहाबाद) के कुंभ में गंगा में गोते मारकर कितने लोग आनंदित हो रहे हैं, शांति पा रहे हैं, पुण्यमयी प्रसन्नता पा रहे हैं। भारत में राज्य उसीका टिकेगा जो भारतवासियों की श्रद्धा का आदर करेगा। जो भारतवासियों की श्रद्धा को उखाड़ेगा, भारतवासी उसीको उखाड़कर फेंक देंगे।''

मैं पंडितजी को धन्यवाद देता हूँ कि उनकी हयाती में 'अंधश्रद्धा उन्मूलन कानून' नहीं बना।

शुभ दीपावली

सत्त्व का दीपक, अगम की बाती, ज्ञान-प्रकाश तुम्हारा हो।
तब ही सच्ची दिवाली है, जब सच्चा उजियारा हो॥

नरक चतुर्दशी : मंत्रसिद्धि-दिवस

(नरक चतुर्दशी : ११ नवंबर ०४)

✻ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ✻

नरक चतुर्दशी (काली चौदस) की रात्रि में मंत्रजप करने से मंत्र सिद्ध होता है । यह रात्रि मंत्रजापकों के लिए वरदानस्वरूप है । इस रात्रि में सरसों के तेल अथवा घी के दीये से काजल बनाना चाहिए । इस काजल को आँखों में आँजने से विशेष लाभ होता है । बच्चों व बड़ों को भूत-प्रेत और नजर लगने से बचाने के लिए भी यह काजल उपयोगी है ।

कुबेर ने भगवती महालक्ष्मी के जिस मंत्र से उनकी उपासना करके परम ऐश्वर्य प्राप्त किया, उसी मंत्र के प्रभाव से दक्षसावर्णि मनु को बहुत ऊँचा पद मिला तथा राजा मंगल और प्रियव्रत को भी अथाह संपदा, सामर्थ्य एवं यश प्राप्त हुआ । ध्रुव के पिता राजा उत्तानपाद और राजा केदार को भी उसी मंत्र से अखंड संपदा मिली । उस मंत्र को यदि कोई नरक चतुर्दशी की रात्रि में जपता है तो लक्ष्मीजी उस पर प्रसन्न होती हैं । इससे जापक के हृदय में जो ऐश्वर्य-सामर्थ्य लाने की योग्यता का केन्द्र है वह विकसित होता है । मंत्र है :

श्रीं ह्रीं क्लीं ऐं कमलवासिन्यै स्वाहा ।

कुछ मंत्र ऐसे होते हैं जिनका अर्थ समझ में नहीं आता किंतु उनके उच्चारण से शरीर के सूक्ष्म केन्द्र प्रभावित होकर ब्रह्मांड के अंदर जो अथाह रहस्य छुपे हैं उनसे तादात्म्य कर पाते हैं ।

जिनके पास विवेक है वे **ॐ नमो भाग्यलक्ष्म्यै च विद्महे । अष्टलक्ष्म्यै च धीमहि । तन्नो लक्ष्मीः प्रचोदयात् ।** या **श्रीं ह्रीं क्लीं ऐं कमलवासिन्यै स्वाहा ।** का जप करके बाहर की लक्ष्मी नहीं चाहते । वे तो केवल परमात्मा को चाहते हैं ।

तुम भी लक्ष्मीदेवी से प्रार्थना करो कि 'माँ ! जो आपको प्रिय है वही मुझे प्रिय हो ।' और लक्ष्मीजी को तो भगवान नारायण ही प्रिय हैं । जब वे परमात्मा तुम्हारे प्रिय हो जायेंगे तो लक्ष्मी माता तो तुम पर प्रसन्न रहेंगी ही । सारी दुनिया का धन, सत्ता और मान परमात्मसुख के आगे दो कौड़ी की भी कीमत नहीं रखता ।

उपरोक्त प्रकार से प्रार्थना करके माँ लक्ष्मी से बाह्य वैभव न चाहकर आत्मवैभव चाहोगे तो मुझे प्रसन्नता होगी । मुझे लगता है कि इससे लक्ष्मी माता भी प्रसन्न होंगी, नारायण भी प्रसन्न होंगे और आपको भी परमात्म-प्रसन्नता मिलेगी ।

संपदाप्राप्ति की इच्छावाले संपदाप्राप्ति के लिए और परमात्मप्राप्ति की इच्छावाले परमात्मप्राप्ति के लिए नरक चतुर्दशी की रात्रि में श्रद्धा-तत्परता से विधिवत् जप करें ।

'खग्रास चंद्रग्रहण' (२८ अक्टूबर) पर विशेष

जो प्रतिदिन प्रातःकाल पच्चीस बार **'ॐ नमो नारायणाय'** इस अष्टाक्षर मंत्र का जप करके जल पीता है, वह सब पापों से मुक्त, ज्ञानवान तथा नीरोग होता है । चंद्रग्रहण और सूर्यग्रहण के समय उपवासपूर्वक ब्राह्मी घृत का स्पर्श करके उक्त मंत्र का आठ हजार जप करने के पश्चात् ग्रहण शुद्ध होने पर श्रेष्ठ साधक उस घृत को पी ले । ऐसा करने से वह मेधा (धारणशक्ति), कवित्वशक्ति तथा वाक्सिद्धि प्राप्त कर लेता है ।

ग्रहण के समय पालनीय नियम

✻ सूर्यग्रहण या चंद्रग्रहण के समय भोजन करनेवाला मनुष्य जितने अन्न के दाने खाता है, उतने वर्षों तक 'अरुन्तुद' नरक में वास करता है । फिर वह उदर रोग से पीड़ित मनुष्य होता है । फिर गुल्मरोगी, काना और दंतहीन होता है । **(देवी भागवत : ९.३५.११-१३)**

✻ चंद्रग्रहण और सूर्यग्रहण के अवसर पर दूसरे का अन्न खाने से बारह वर्षों का एकत्र किया हुआ सब पुण्य नष्ट हो जाता है । **(स्कंद पुराण, प्रभास खंड : २०७.११-१३)**

✻ भूकंप एवं ग्रहण के अवसर पर पृथ्वी को खोदने से महान पाप लगता है और ऐसा करनेवाला दूसरे जन्म में अंगहीन होता है । **(देवी भागवत : ९.१०.२८)**

रामराज्य से पूर्व भरत भैया का शासन आवश्यक

[दीपावली पर्व : १० से १४ नवंबर २००४]

✻ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ✻

दीपमालाओं का पर्व है दीपावली।

दीपो ज्योतिः परं ब्रह्म दीपो ज्योतिर्जनार्दनः।
दीपो हरतु मे पापं दीपो ज्योतिर्नमोऽस्तु ते ॥

'उस परब्रह्म-प्रकाशस्वरूपा दीपज्योति को नमस्कार है। वह विष्णुस्वरूपा दीपज्योति मेरे पाप को नष्ट करे।'

आरती के समय दीपज्योति प्रकटानेवालों की शत्रुवृद्धि नहीं होती। दिवाली पर तो अनेक-अनेक दीयों की लौएँ दिखती हैं। अनेक-अनेक घरों में अनेक-अनेक दीये जलाये जाते हैं। कहीं छोटा दीया होता है तो कहीं बड़ा, कहीं मिट्टी का दीया होता है तो कहीं धातु का। किसीमें सरसों का तेल होता है तो किसीमें तिलों का, किसीमें घी होता है तो किसीमें मोम। दीये अनेक, दीये जलानेवाले अनेक, दीयों की लौएँ अनेक लेकिन उनमें अग्निदेव एक-के-एक। दीपावली हमें यह संदेश देती है कि तुम्हारे-हमारे शरीर अनेक, तुम्हारे-हमारे चित्त अनेक, तुम्हारे-हमारे विचार अनेक लेकिन उनका द्रष्टा - ज्योतियों की ज्योति चैतन्य परमात्मा एक-का-एक। यदि आप उस एक में टिक जायें तो आपकी महा दिवाली हो जायेगी, परम दिवाली हो जायेगी।

पटाखे अनेक लेकिन उनमें बारूद, गंधक एक। अनेक के पीछे उस एक की ही सत्ता काम करती है। उस एक सत्ता - ईश्वर में चित्त लगाना योग है और अनेक को सत्य समझकर सुख भोगना कृपणता है।

भोगी होकर
सब पछताते हैं,
इसको सब
कोई क्या जानें...

अयोध्यावासी तब तक दुःखी, चिंतित और परेशान थे जब तक रामराज्य नहीं हुआ था। राम-वनवास चल रहा था तो अयोध्या सूनी थी। ऐसे ही नवद्वारवाली इस देहरूपी अयोध्या नगरी में यदि आत्मारूपी राम का रस नहीं है तो यह सूनी है और इसे सुख दिलाने के लिए जीव बेचारा न जाने क्या-क्या करता है।

आज ही के दिन भगवान श्रीराम अयोध्या पधारनेवाले थे इसलिए अयोध्यावासियों द्वारा घर-घर, गली-गली की साफ-सफाई की गयी। श्रीरामजी आ रहे हैं इसकी खुशी मनाने के लिए मिठाई खायी-खिलायी गयी और दीये जलाये गये।

ये तो बाहरी दीये हैं, बाहरी सफाई है लेकिन भगवान, शास्त्र एवं हमारी संस्कृति चाहती है कि इसके साथ-साथ हम अपने हृदय से भी वैर के जहर को साफ कर दें। चिंता, भय, शोक और परेशानी की बातों का सफाया कर दें। जिन विचारों से दुःख पैदा होता है, जिस चिंतन से शोक-उद्वेग पैदा होता है उस विचार एवं चिंतनरूपी कचरे को निकाल दें, तभी हमारी देहरूपी अयोध्या में आत्मारूपी श्रीराम प्रकट होंगे और हमें तसल्ली होगी।

दशरथनंदन श्रीराम तो बाह्य अयोध्या में आये लेकिन रोम-रोम में रमनेवाले अव्यक्त राम आपकी तनरूपी अयोध्या में प्रकट होना चाहते हैं। आप उनके प्राकट्य की तैयारी करें। नकारात्मक, फरियादात्मक तथा दुःख और शोक के विचारों को दूर करें। दुःख को दूर करने का उपाय यह है कि उसका चिंतन न करें। शोक को दूर करने का उपाय यह है कि बीती हुई बात

को सपना समझें और उसको देखनेवाली ज्योतियों की ज्योति आत्मा-परमात्मा को अपना समझें।

उमा कहउँ मैं अनुभव अपना।
सत हरि भजनु जगत सब सपना ॥

बीते हुए का शोक होता है, भविष्य का भय होता है और वर्तमान में आसक्ति के कारण जीव विकारों में गिरता है। आपकी देहरूपी अयोध्या में आत्मारूपी राम प्रकट होंगे किंतु उससे पूर्व आपके मनरूपी भरत भैया का आपकी देहरूपी अयोध्या पर शासन होना चाहिए। रामराज्य ऐसे ही नहीं होता। वल्कल पहनकर, कुशा पर सोकर, झोंपड़ी में रहकर श्रीरामजी की इंतजारी में संयम से राज्य सँभालते थे भरत ! उनके मन में यही भावना थी कि 'यह राज्य मेरा नहीं श्रीरामजी का है, मैं तो केवल सेवक हूँ।'

इसी प्रकार आपका मनरूपी भरत भैया भी इस देह को 'मैं' न माने क्योंकि यह परमेश्वर श्रीराम की दी हुई है। आप तो मात्र इसको सँभालने के लिए हैं। भरत भैया ने १४ साल तक अयोध्या सँभाली थी तो आप इस देहरूपी अयोध्या को ४०-५०-१०० साल तक सँभालोगे... लेकिन आखिर में इसको आत्मारूपी राम के हवाले कर दोगे तो ठीक है, नहीं तो यमदूत आ जायेंगे छुड़ाने। अतः प्रार्थना करें कि 'मेरे तन की चेष्टाएँ, मेरे मन का चिंतन एवं मेरी मति के विचार प्रभु के कार्यों में काम आ जायें, प्रभु की प्रीति के काम आ जायें।'

शोक-दुःख-उद्वेगकारक चिंतनरूपी सारा कचरा जिनके मनरूपी भरत भैया ने निकाल दिया है, उनके हृदय में तो रामरस प्रकट होता ही है।

जैसे भरत भैया के संयम-पालन व प्रजा पर अनुशासन के बाद ही अयोध्या में रामराज्य आता है, ऐसे ही आपके मनरूपी भरत भैया के साधन-भजन में प्रतिष्ठित होकर देह पर अनुशासन करने के बाद ही आपके अंतःकरण में चैतन्यस्वरूप आत्मा का राज्य प्रकट होगा।

जो मन में आया वह खा लिया, जो मन में आया वह बोल दिया, जहाँ जाने की इच्छा हुई वहाँ चल दिये तो आपके अंतःकरण में आत्मारूपी राम का राज्य होना संभव नहीं है। रामराज्य हेतु भरत भैया की नाईं संयम से रहो और ममता छोड़कर इस देहरूपी अयोध्या की सँभाल करो। न आप भयभीत हों न दूसरों को भयभीत करो, न आप शोकातुर हों न दूसरों को शोक की बात सुनाओ, न आप चिंतित हों न दूसरों के लिए चिंता बढ़ाओ। आप निश्चिंत, निर्भीक व निर्दुःख रहो। निश्चिंत कौन रहता है ? - जो निश्चिंत नारायण की प्रीति के लिए कर्म करता है। निर्भीक कौन रहता है ? - जो निर्भीक नारायण को अपना आत्मा - 'मैं' मानता है, शरीर को 'मैं' नहीं मानता। निर्दुःख कौन रहता है ? - जो दुःखहारी प्रभु को अपना और अपने को प्रभु का मानता है। आप भी निश्चिंत, निर्भीक और निर्दुःख हो जाइये मनरूपी भरत भैया का शासन लाकर..

स्फुरणे को स्फुरणा जानो

❊ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ❊

संस्कारों के अनुसार शरीर बनते हैं, प्रारब्ध बनता है। जिसका जैसा प्रारब्ध होता है वह वैसा ही अन्न-जल लेता है, फिर संसार से विदा होता है। फिर पैदा होता है, फिर संसार में विचरण करता है। ऐसे इस बेचारे जीव के शरीरों का अंत नहीं होता।

मन के स्फुरणे के कारण वह अनंत-अनंत योनियों में भटकता है, घूमता है। इस स्फुरणे को वृत्ति या कलना भी बोलते हैं।

स्फुरणा तीन प्रकार का होता है - सात्त्विक, राजसी और तामसी। स्फुरणे में निश्चय होता है तो उसे बुद्धि बोलते हैं, चिंतन होता है तो चित्त बोलते हैं और अहं होता है तो अहंकार बोलते हैं। बाकी मन ऐसी कोई चीज नहीं है कि उसका वजन १० ग्राम या ५० ग्राम हो। जीव को मनुष्य-जन्म इसलिए मिलता है कि वह मन के स्फुरणे को स्फुरणा समझकर जहाँ से वह उत्पन्न होता है उस निष्फुर आत्मा में विश्रांति पा ले। निष्फुर आत्मा, जो ज्ञानस्वरूप है, उसको 'मैं' रूप में जान ले तो मनुष्य का जन्म-मरण का चक्कर समाप्त हो जाता है।

मन में स्फुरण होता रहता है कि 'यह अच्छा है... यह खाना है... यह पीना है... यह भोगना है...' लेकिन नींद के समय मन सो गया तो सब शांत। ऐसे ही अगर ध्यान-भजन से मन परमात्मा में विश्रांति पा ले तो भी परम शांति मिलने लगती है और परमात्म-रस आने लगता है। जो इस रास्ते चलते हैं वे मन की चाल-ढाल को जान लेते हैं।

दुःख कब होता है ? - जब मन में वासना आती है, आग्रह होता है कि 'ऐसा ही हो... यह मिले और यह न मिले...' नहीं तो 'बँगला मिला तो भी वाह-वाह और झोंपड़ा मिला तो भी वाह-वाह... शरीर मिला तो भी वाह-वाह और शरीर छूटा तो भी वाह-वाह...' ऐसी समझ रखने पर सुख-ही-सुख है।

कबीरजी ने कहा है :

यह तन काँचा कुंभ है, फूटत न लागे वार।
फटका लागे फुटि परै, गरव करे वे गँवार ॥

यह शरीर कच्चे कुंभ के समान है। इसको हृदयाघात अथवा अन्य किसी प्रकार का एक फटका लग जाता है तो यह चल बसता है। किंतु इस कच्चे कुंभ में जो अमर आत्मा है, चैतन्यस्वरूप परमात्मा है, ज्ञानस्वरूप, साक्षीस्वरूप, आनंदस्वरूप, निरंजन, अकाल पुरुष है, वही अपना-आपा है। उसी चैतन्य की सत्ता से श्वासोच्छ्वास चल रहे हैं किंतु मन के स्फुरणे से और शरीर में आसक्ति रखने से जीव वास्तविक ज्ञान में नहीं टिकता। वास्तविक ज्ञान में न टिकने के कारण जीव को संसार के बंधन बाँध लेते हैं और वह जन्मता-मरता रहता है।

मन के स्फुरणे से जुड़कर पहले हम शरीर को 'मैं' मानने लगते हैं, फिर स्फुरणे के अनुसार ही अपने को मानने लगते हैं। बुराई के साथ जुड़कर अपने को बुरा मानने लगते हैं और भलाई के साथ जुड़कर अपने को भला मानने लगते हैं। मन में चिंता का स्फुरण हुआ तो चिंतित हो जाते हैं, भय का स्फुरण हुआ तो भयभीत हो जाते हैं और अहंकार का स्फुरण हुआ तो अहंकारी हो जाते हैं।

मन का यह स्फुरणा आत्मा-परमात्मा की सत्ता से ही उठता है परंतु इसके पीछे अपन चलते हैं तो जन्म-मरण के चक्कर काटने पड़ते हैं। यदि स्फुरणे को स्फुरणा समझ लें, स्फुरणे का उद्‌गम-स्थान जो आत्मा-परमात्मा है, उसमें विश्रांति पा लें तो निष्फुर पद में पहुँचने में बड़ी मदद मिलेगी।

जो पानी नीचे की ओर बहता है उसे मोटर द्वारा ऊपर भी तो चढ़ाया जाता है। ऐसे ही जो मन

स्फुरणे की धारा में बहकर नीचे की ओर जाता है और जन्म-मरण के चक्कर में पड़ता है, वही मन अगर जप-ध्यान आदि करके सत्संग का विचार करे तो उर्ध्वगामी भी होता है और परमात्म-पद को पा लेता है ।

वक्त बीता जा रहा है । यह बड़ा कीमती है । मन के स्फुरणे की धारा में बहनेवाले जीव साधारण जीव हैं किंतु जो स्फुरणे की धारा से बचते हैं, किनारे लगने की कोशिश करते हैं उनको साधक कहा जाता है । जो शुद्धस्वरूप परमात्मा का ज्ञान पाकर उसीका अभ्यास और चिंतन करते हैं, वे स्फुरणे को स्फुरणा जानकर सब दुःखों से सदा के लिए छूट जाते हैं ।

पानी केरा बुदबुदा, इस मानुष की जात ।
देखत ही छुप जात है, ज्यों तारा परभात ॥

जैसे प्रभात में तारे देखते-ही-देखते छुप जाते हैं, वैसे ही पानी के बुदबुदे के समान क्षणभंगुर यह मनुष्य-जन्म कब-कहाँ पूरा हो जाय, कोई पता नहीं । इसलिए जगत की भोग-वासना और सुविधाओं की चिंता न करके जगदीश्वर में मन की वृत्ति लगानी चाहिए ।

मन का कोई रूप नहीं है, कोई आकृति नहीं है । समझो, आप यहाँ बैठे हैं और आपका मन गया कनाडा में । फिर यदि आप कहें कि 'मैं कनाडा जाकर आ गया ।' तो यह सही नहीं है । न मन कनाडा जाता है, न कनाडा इधर आता है किंतु मन में वैसा भाव बन जाता है, स्फुरणा हो जाता है ।

अपने भावों को उत्तम बनाओ । मुंबई में प्रेमपुरी महाराज हो गये । वे संन्यासी थे । एक बार वे कार में बैठकर कहीं जा रहे थे । बरसात के दिन होंगे । पीछेवाली गाड़ी आगे निकल गयी तो कीचड़ के छींटों से उनके कपड़े गंदे हो गये, साथ में कुछ छींटे मुँह में भी चले गये । ड्राइवर बड़े गुस्से में आ गया । उसने प्रेमपुरी महाराज से कहा : ''महाराज ! मैं तेज रफ्तार से गाड़ी भगाकर उस कीचड़ उछालनेवाली गाड़ी का पीछा करता हूँ और उसके ड्राइवर को जरा सबक सिखाता हूँ ।''

प्रेमपुरी महाराज ने कहा : ''भाई ! उसे क्या सबक सिखाना, तू ही अपने मन को प्रसन्न रखने का सबक सीख ले । 'ठाकुरजी का चरणामृत तो बहुत बार पीते थे, आज कार का चरणामृत पी लिया ।' - ऐसा सोचकर आनंद ले ले, भाई !''

मन में अगर सद्भाव हो तो मनुष्य दुःख को भी सुख बना लेता है, प्रतिकूलता को भी अनुकूलता में बदल देता है किंतु मन में यदि दुर्भाव हो तो सुख को भी दुःख बना देता है ।

खाओ, पीयो, सोओ, उठो, बैठो किंतु समझो कि यह स्फुरणा है और ज्ञानस्वरूप मेरे चैतन्य आत्मा की सत्ता से स्फुरता है । स्फुरणे के गुलाम मत बनो । समय बड़ा कीमती है और शरीर का कोई भरोसा नहीं है । इसलिए समय का खूब सदुपयोग करो, खूब सावधानी रखो । प्रत्येक मिनट का हिसाब रखो कि कहीं हाहा-हूहू में तो मन नहीं बह गया ? बह गया हो तो फिर-फिर से उसको देखनेवाले साक्षीस्वरूप आत्मा में आ जाओ ।

*

सेवाधारियों व सदस्यों के लिए विशेष सूचना

(१) कृपया अपना सदस्यता शुल्क या अन्य किसी भी प्रकार की नगद राशि रजिस्टर्ड या साधारण डाक द्वारा न भेजा करें । इस माध्यम से कोई भी राशि गुम होने पर आश्रम की जिम्मेदारी नहीं रहेगी । अतः अपनी राशि मनी ऑर्डर या ड्राफ्ट द्वारा ही भेजने की कृपा करें ।

(२) 'ऋषि प्रसाद' के नये सदस्यों को सूचित किया जाता है कि आपकी सदस्यता की शुरुआत पत्रिका की उपलब्धता के अनुसार कार्यालय द्वारा निर्धारित की जायेगी ।

महत्त्वपूर्ण निवेदन

सदस्यों के डाक-पते में परिवर्तन अगले अंक के बाद के अंक से कार्यान्वित होगा । जो सदस्य १४४वें अंक से अपना पता बदलवाना चाहते हैं, वे कृपया अक्टूबर २००४ के अंत तक अपना नया पता भेज दें ।

अठारहवें अध्याय का माहात्म्य

पार्वतीजी ने महादेवजी से कहा : भगवन् ! 'श्रीमद्भगवद्गीता' के अठारहवें अध्याय के माहात्म्य का वर्णन कीजिये।

श्रीमहादेवजी ने कहा : गिरिनंदिनी ! चिन्मय आनंद की धारा बहानेवाले अठारहवें अध्याय के पावन माहात्म्य को, जो वेद से भी उत्तम है, श्रवण करो। यह संपूर्ण शास्त्रों का सर्वस्व, कानों में पड़े हुए रसायन के समान तथा संसार के यातना-जाल को छिन्न-भिन्न करनेवाला है। सिद्धपुरुषों के लिए यह परम रहस्य की वस्तु है। इसमें अविद्या का नाश करने की पूर्ण क्षमता है। यह भगवान विष्णु की चेतना के समान तथा सर्वश्रेष्ठ परम पद प्रदायक है। इतना ही नहीं, यह विवेकमयी लता का मूल, काम-क्रोध और मद को नष्ट करनेवाला, इन्द्र आदि देवताओं के चित्त का विश्राम-मंदिर तथा सनक-सनंदन आदि महायोगियों का मनोरंजन करनेवाला है। इसके पाठमात्र से यमदूतों की गर्जना बंद हो जाती है। पार्वती ! इससे बढ़कर कोई ऐसा रहस्यमय उपदेश नहीं है, जो संतप्त मानवों के त्रिविध ताप को हरनेवाला और बड़े-बड़े पातकों का नाश करनेवाला हो। अठारहवें अध्याय का माहात्म्य विलक्षण है। इसके सम्बंध में जो पवित्र उपाख्यान है, उसे भक्तिपूर्वक सुनो। उसके श्रवणमात्र से जीव समस्त पापों से मुक्त हो जाता है।

मेरुगिरि के शिखर पर अमरावती नाम की एक रमणीय पुरी है। उसे पूर्वकाल में विश्वकर्मा ने बनाया था। उस पुरी में देवताओं द्वारा सेवित इन्द्र शची के साथ निवास करते थे। एक दिन वे सुखपूर्वक बैठे हुए थे, इतने में उन्होंने देखा कि भगवान विष्णु के दूतों से सेवित एक अन्य पुरुष वहाँ आ रहा है। इन्द्र उस नवागत पुरुष के तेज से तिरस्कृत होकर तुरंत ही अपने मणिमय सिंहासन से मंडप में गिर पड़े। तब इन्द्र के सेवकों ने देवलोक के साम्राज्य का मुकुट उस नूतन इन्द्र के मस्तक पर रख दिया। फिर तो दिव्य गीत गाती हुई देवांगनाओं के साथ सब देवता उनकी आरती उतारने लगे। गंधर्वों का ललित स्वर में मंगलमय गान होने लगा। ऋषियों ने वेदमंत्रों का उच्चारण करके उन्हें अनेक आशीर्वाद दिये।

इस प्रकार इस नवीन इन्द्र को सौ यज्ञों का अनुष्ठान किये बिना ही नाना प्रकार के उत्सवों से सेवित देखकर पुराने इन्द्र को बड़ा विस्मय हुआ। वे सोचने लगे : 'इसने तो मार्ग में न कभी पौसले (प्याऊ) बनवाये हैं, न पोखरे खुदवाये हैं और न पथिकों को विश्राम देनेवाले बड़े-बड़े वृक्ष ही लगवाये हैं। अकाल पड़ने पर अन्नदान के द्वारा इसने प्राणियों का सत्कार भी नहीं किया है। इसके द्वारा तीर्थों में भोजन-सत्र और गाँवों में यज्ञ का अनुष्ठान भी नहीं हुआ है, फिर इसने यहाँ भाग्य की दी हुई ये सारी वस्तुएँ कैसे प्राप्त कीं ?' इस चिंता से व्याकुल होकर इन्द्र भगवान विष्णु से पूछने के लिए प्रेमपूर्वक क्षीरसागर के तट पर गये और वहाँ अकस्मात् अपने साम्राज्य से भ्रष्ट होने का दुःख निवेदन करते हुए बोले :

''लक्ष्मीकांत ! मैंने पूर्वकाल में आपकी प्रसन्नता के लिए सौ यज्ञों का अनुष्ठान किया था। उसीके पुण्य से मुझे इन्द्रपद की प्राप्ति हुई थी, किंतु इस समय स्वर्ग में कोई दूसरा ही इन्द्र अधिकार जमाये बैठा है। उसने तो न कभी धर्म का अनुष्ठान किया है और न यज्ञों का, फिर उसने मेरे दिव्य सिंहासन पर कैसे अधिकार जमाया है ?''

श्रीभगवान बोले : इन्द्र ! वह गीता के अठारहवें अध्याय में से पाँच श्लोकों का प्रतिदिन पाठ करता है। उसीके पुण्य से उसने तुम्हारे उत्तम साम्राज्य को प्राप्त कर लिया है। गीता के अठारहवें अध्याय का पाठ सब पुण्यों का शिरोमणि है। उसीका आश्रय

लेकर तुम भी अपने पद पर स्थिर हो सकते हो।

भगवान विष्णु के ये वचन सुनकर और उस उत्तम उपाय को जानकर इन्द्र ब्राह्मण का वेष बनाकर गोदावरी-तट पर गये । वहाँ उन्होंने कालिकाग्राम नामक उत्तम और पवित्र नगर देखा, जहाँ काल का भी मर्दन करनेवाले भगवान कालेश्वर विराजमान हैं । वहीं तट पर एक परम धर्मात्मा ब्राह्मण बैठे थे, जो बड़े ही दयालु और वेदों के पारंगत विद्वान थे । वे अपने मन को वश में करके प्रतिदिन गीता के अठारहवें अध्याय का स्वाध्याय किया करते थे। उन्हें देखकर इन्द्र ने बड़ी प्रसन्नता के साथ उनके दोनों चरणों में मस्तक झुकाया और उन्हींसे अठारहवें अध्याय को पढ़ा । फिर उसीके पुण्य से उन्होंने श्रीविष्णु का सायुज्य प्राप्त कर लिया। इन्द्र आदि देवताओं का पद बहुत ही छोटा है, यह जानकर वे परम हर्ष के साथ उत्तम वैकुंठ धाम को गये । अतः यह अध्याय मुनियों के लिए श्रेष्ठ परम तत्त्व है । पार्वती ! अठारहवें अध्याय के इस दिव्य माहात्म्य के श्रवणमात्र से मनुष्य सब पापों से छुटकारा पा जाता है । *('पद्म पुराण' से)*

गीता के १८वें अध्याय के कुछ श्लोक

श्रेयान्स्वधर्मो विगुणः परधर्मात्स्वनुष्ठितात्।
स्वभावनियतं कर्म कुर्वन्नाप्नोति किल्बिषम्॥

अच्छी प्रकार आचरण किये हुए दूसरे के धर्म से गुणरहित भी अपना धर्म श्रेष्ठ है, क्योंकि स्वभाव से नियत किये हुए स्वधर्मरूप कर्म को करता हुआ मनुष्य पाप को नहीं प्राप्त होता । (४७)

ईश्वरः सर्वभूताना हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति ।
भ्रामयन्सर्वभूतानि यंत्रारूढानि मायया॥

हे अर्जुन ! शरीररूपी यंत्र में आरूढ़ हुए संपूर्ण प्राणियों को अंतर्यामी परमेश्वर अपनी माया से उनके कर्मों के अनुसार भ्रमण कराता हुआ सब प्राणियों के हृदय में स्थित है। (६१)

तमेव शरणं गच्छ सर्वभावेन भारत।
तत्प्रसादात्परां शान्तिं स्थानं प्राप्स्यसि शाश्वतम्॥

हे भारत ! तू सब प्रकार से उस परमेश्वर की ही शरण में जा। उस परमात्मा की कृपा से ही तू परम शांति को तथा सनातन परम धाम को प्राप्त होगा। (६२)

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु।
मामेवैष्यसि सत्यं ते प्रतिजाने प्रियोऽसि मे॥

हे अर्जुन ! तू मुझमें मनवाला हो, मेरा भक्त बन, मेरा पूजन करनेवाला हो और मुझको प्रणाम कर। ऐसा करने से तू मुझे ही प्राप्त होगा, यह मैं तुझसे सत्य प्रतिज्ञा करता हूँ क्योंकि तू मेरा अत्यंत प्रिय है। (६५)

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥

संपूर्ण धर्मों को अर्थात् संपूर्ण कर्तव्यकर्मों को मुझमें त्यागकर तू केवल एक मुझ सर्वशक्तिमान सर्वाधार परमेश्वर की ही शरण में आ जा। मैं तुझे संपूर्ण पापों से मुक्त कर दूँगा, तू शोक मत कर। (६६)

य इमं परमं गुह्यं मद्भक्तेष्वभिधास्यति।
भक्तिं मयि परां कृत्वा मामेवैष्यत्यसंशयः॥

जो पुरुष मुझमें परम प्रेम करके इस परम रहस्ययुक्त गीताशास्त्र को मेरे भक्तों में कहेगा, वह मुझको ही प्राप्त होगा - इसमें कोई संदेह नहीं है। (६८)

अध्येष्यते च य इमं धर्म्यं संवादमावयोः।
ज्ञानयज्ञेन तेनाहमिष्टः स्यामिति मे मतिः॥

जो पुरुष इस धर्ममय हम दोनों के संवादरूप गीताशास्त्र को पढ़ेगा, उसके द्वारा भी मैं ज्ञानयज्ञ से पूजित होऊँगा - ऐसा मेरा मत है। (७०)

नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धा त्वत्प्रसादान्मयाच्युत।
स्थितोऽस्मि गतसन्देहः करिष्ये वचनं तव॥

अर्जुन बोले : हे अच्युत ! आपकी कृपा से मेरा मोह नष्ट हो गया और मैंने स्मृति प्राप्त कर ली है। अब मैं संशयरहित होकर स्थित हूँ, अतः आपकी आज्ञा का पालन करूँगा। (७३)

यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धरः।
तत्र श्रीर्विजयो भूतिर्ध्रुवा नीतिर्मतिर्मम॥

संजय (धृतराष्ट्र से) बोले : हे राजन् ! जहाँ योगेश्वर भगवान श्रीकृष्ण हैं और जहाँ गांडीव-धनुषधारी अर्जुन हैं, वहीं पर श्री, विजय, विभूति और अचल नीति है - ऐसा मेरा मत है। (७८)
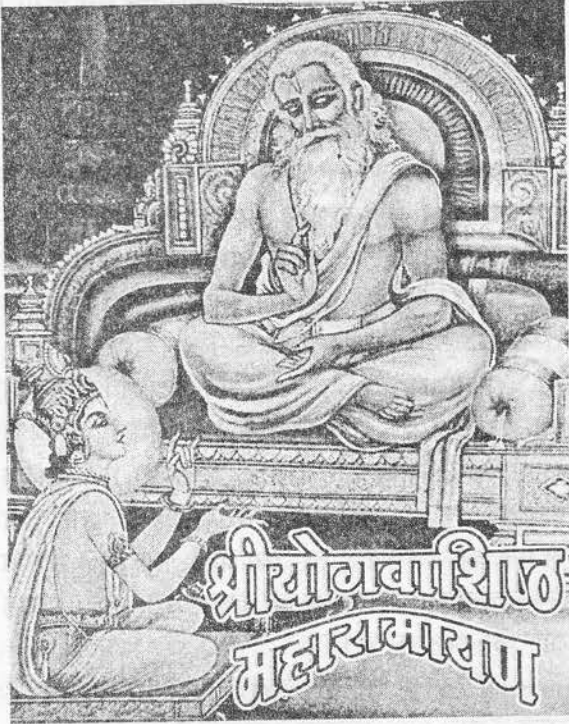
श्रेयस् और प्रेयस्

※ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ※

'श्री योगवाशिष्ठ महारामायण' में 'स्थिति प्रकरण' के सर्ग ४८ से ५५ के दरम्यान यह कथा आती है :

ऋषीश्वर शरलोमा एक पर्वत पर निवास करते थे। उनके यहाँ दाशूर नामक पुत्र का जन्म हुआ। समय पाकर जब उनका देहांत हो गया, तब दाशूर अकेला रह गया और टिटिहरी (क्रौंच पक्षी) के सदृश करुणाजनक रुदन करने लगा। जैसे हेमंत ऋतु में कमल की शोभा नष्ट हो जाती है, वैसे ही वह दीन हो गया।

वहाँ अदृष्ट-शरीर वनदेवी थी। उसने दया करके आकाशवाणी की कि ''हे ऋषिपुत्र ! अज्ञानी की नाईं क्या रुदन करता है ? यह सर्व संसार असत्‌रूप है। क्या तू नहीं देखता कि यह संसार नाशरूप और महाचंचल है ? सब पदार्थ कालक्रम से उत्पन्न और नष्ट होते हैं, कोई स्थिर नहीं रहता। ब्रह्मा से कीट पर्यंत जो कुछ जगत तुझको भासता है वह सब नाशरूप है, इसमें कोई संदेह नहीं। जो आता है वह जाता है और जो दिखता है वह माया है, बदलनेवाला है। जिसकी सत्ता से दिखता है वह परमात्मा एकरस है। परिवर्तनशील और नष्ट होनेवाले शरीर का तू कब तक चिंतन करेगा ? तू कब तक रुदन करेगा ? तेरे रोने से पिता का शरीर वापस नहीं आयेगा। इसलिए तू उनके मरने का विलाप मत कर। जैसे सूर्य उदय होकर अस्त होता है, वैसे ही जो उत्पन्न हुआ है वह नष्ट होगा ही।''

मनुष्य को चाहिए कि अपनी बुद्धि का सदुपयोग करे। बुद्धिमान वह है जो दुःख के समय धैर्य रखे और सुख का समय सत्य की खोज में लगाये। दुःख में धैर्य छोड़ देना और सुख में श्रेयस् छोड़ देना यह बुद्धि का दिवाला निकालना है।

वनदेवी के वचन सुनकर दाशूर धैर्यवान हुआ और शांत होकर उसने पिता की सब अंतिम क्रियाएँ कीं। इसके अनंतर उसने तप करने का विचार किया और पवित्र स्थान की खोज में निकल पड़ा किंतु उसका चित्त किसी भी स्थान में शांत न हुआ। सारी पृथ्वी उसको अशुद्ध दिखी। कहीं मनुष्य, कहीं असुर तो कहीं कीट-पतंग मरे हुए थे। कहीं भोग भोगे हुए थे तो कहीं कोई विघ्न दिखा। फिर उसने विचार किया कि 'सब स्थान अशुद्ध हैं, अतः किसी वृक्ष की शाखा पर बैठकर तप करूँ। ऐसा कोई उपाय हो कि मैं वृक्ष के अग्रभाग पर स्थित हो सकूँ।'

ऐसा सोचकर वह अग्नि जलाकर उसमें अपने कंधे का मांस काटकर होमने लगा। सब देवों के मुखरूप अग्नि देवता ने सोचा कि 'ब्राह्मण का मांस मेरे मुख में आ जाय यह उचित नहीं है।' इसलिए अग्नि देवता साकार देह धरकर ब्राह्मण के निकट आये और बोले :

''ब्राह्मणकुमार ! तेरी जो इच्छा हो वह माँग ले।''

दाशूर ने धूप-पुष्प आदि से अग्निदेव का पूजन किया और प्रसन्न होकर कहा : ''हे भगवन् ! मुझे तप करने हेतु कोई शुद्ध स्थान नहीं दिखता, इसलिए मैं चाहता हूँ कि मुझमें इस वृक्ष की अग्र शिखा पर स्थित होने की शक्ति हो और वहाँ मैं तप करूँ। आप यही वर मुझको दें।''

'ऐसा ही हो' कहकर अग्निदेव अंतर्धान हो गये।

वर पाकर दाशूर उस कदंब के वृक्ष के अग्रभाग पर स्थित होकर तप करने लगा, इसलिए उसका नाम 'कदंबनिवासी दाशूर' (कदंबतपासुर) हुआ।

दाशूर परमार्थ पद से अज्ञात था इसलिए कर्म में स्थित था और उसका ध्यान फल की ओर था। मन से ही उसने यज्ञ आरंभ किया।

बाह्य पूजा से भी ज्यादा लाभ मानस पूजा से होता है। भोग में वृत्ति जाय उसकी अपेक्षा देवपूजन में जाय यह अच्छी बात है किंतु मानस पूजा उससे भी श्रेष्ठ है। वास्तव में भगवान शिव, विष्णु अथवा अन्य देवी-देवताओं को आपके पदार्थों की आवश्यकता नहीं है, किंतु पदार्थों में ही वृत्ति उलझी रहे इसकी अपेक्षा आप उन्हीं पदार्थों को भगवद्-अर्पण करने की भावना करो, ताकि वृत्ति पदार्थों में नहीं भगवान में रहे। इसलिए भगवान की सेवा, पूजा-अर्चना की जाती है। किंतु इससे भी अंतरंग मानस पूजा है।

दाशूर ने मन से ही देवताओं का पूजन करके मन से ही गोमेध, अश्वमेध, नरमेध आदि यज्ञ किये और ब्राह्मणों को बहुत-सी दक्षिणा दी। इस प्रकार मानस पूजन करते-करते दस वर्ष में उसका अंतःकरण शुद्ध हुआ और पूर्वजन्म के श्रवण आदि शुभ संस्कारों के बल से वह आत्मपद में स्थित हुआ।

यदि कोई संतों के मुखारविंद से आत्मज्ञान सुनकर बारंबार आत्मचिंतन करे तो उसका अंतःकरण दस वर्ष की अपेक्षा जल्दी शुद्ध हो जायेगा क्योंकि आत्मा-परमात्मा शुद्ध से भी शुद्ध है।

एक दिन अत्यंत रूपवान, काम के मद से पूर्ण एक वनदेवी नम्र होकर दाशूर की तरफ निहार रही थी। तब दाशूर ने उससे आने का प्रयोजन पूछा।

वनदेवी ने कहा : ''हे मुनीश्वर ! पिछले दिन इंद्र के नंदनवन में उत्सव हुआ था, तब वहाँ क्रीड़ा कर रही सभी वनदेवियाँ पुत्रों से संयुक्त थीं किंतु मैं पुत्रविहीन थी। इस कारण मैं बड़ी दुःखी होकर आपके पास पुत्र की वांछा से आयी हूँ। यदि आप मुझे पुत्र न दोगे तो मैं अग्नि जलाकर जल मरूँगी।''

वनदेवी के वचन सुनकर दाशूर मुनि ने दया करके उसके हाथ में पुष्प दिया और कहा कि ''जा, तुझे एक मास में पूजने योग्य महासुंदर पुत्र होगा। किंतु तूने इच्छा की थी कि यदि पुत्र प्राप्त न हुआ तो मैं जल मरूँगी, इसलिए अज्ञानी पुत्र होगा पर यत्न से उसको ज्ञान प्राप्त होगा।''

तब वनदेवी ने प्रसन्न होकर कहा : ''हे मुनीश्वर ! मैं यहाँ रहकर आपकी सेवा करूँगी।'' तब तुरंत मुनीश्वर ने उसका त्याग किया और कहा : ''हे सुंदरि ! तू अपने स्थान में जाकर रह।'' वनदेवी चली गयी और समय पाकर उसके पुत्र हुआ।

हमको यह आश्चर्य हो सकता है कि फूल से एक मास में पुत्र का जन्म कैसे संभव है ? किंतु सारी सृष्टि का मूल आधार परमात्मा है। उसके संकल्पमात्र से सारी सृष्टि बन सकती है तो फूल से पुत्र का उत्पन्न होना क्या बड़ी बात है ? स्वप्न में संकल्पमात्र से स्वप्न का जगत बन जाता है यह आपका अनुभव है।

जो प्रेयस् (सांसारिक सुख) की ओर लगे हुए हैं उन्हें ये बातें आश्चर्यकारक लगती हैं किंतु जो श्रेयस् की ओर लगे हुए हैं उनको कोई आश्चर्य नहीं लगता। जीव जगत के तुच्छ भोगों तथा वस्तुओं की जितनी इच्छा करता है, परमात्मा से वह उतना ही दूर हो जाता है और अपना सामर्थ्य खो बैठता है। वह जगत के भोग-पदार्थों की ओर से जितना लापरवाह होकर आत्मारामी होता है, उसको अपनी गरिमा की, अपने सामर्थ्य की उतनी ही स्मृति होती है।

जब बालक १२ वर्ष का हुआ तब वनदेवी उसे लेकर दाशूर मुनि के निकट आयी और प्रणाम करके बोली : ''मुनीश्वर ! यह बालक हम दोनों का पुत्र है। मैंने इसको संपूर्ण विद्या सिखाकर परिपक्व किया है किंतु इसे केवल आत्मज्ञान प्राप्त नहीं हुआ है। जिससे यह संसार-चक्र में दुःख पायेगा। अतः आप कृपा करके इसको आत्मज्ञान का उपदेश दें।''

वनदेवी की प्रार्थना सुनकर दाशूर मुनि ने कहा : ''तुम इसको यहाँ छोड़ जाओ।'' वनदेवी बालक को छोड़कर चली गयी। मुनीश्वर ने नाना प्रकार के आख्यान कहकर, इतिहास के दृष्टांत देकर पुत्र को जगाया। वेदांत का उपदेश दिया और अपने अनुभव से जो प्रत्यक्ष था उसका भी उपदेश दिया।

दाशूर मुनि ने कहा : ''हे पुत्र ! मैं तुझसे यथार्थ कहता हूँ, सुन। जिसके जानने से तू संसार-चक्र को ज्यों-का-त्यों देखेगा कि यह वास्तव में क्या है ?

यह संसार सत्य भासता है फिर भी असत्‌रूप है। संकल्प के उपजने से जगत उपजता है और नष्ट होने से नष्ट हो जाता है। जब तू संकल्प का नाश करेगा, तब शीघ्र ही कल्याण को प्राप्त होगा।

अपना संकल्प ही अपने को सुखदायक अथवा दुःखदायक होता है। शुभ संकल्प से जीव शुभ को देखता है और अशुभ संकल्प से अशुभ को देखता है। शुभ संकल्प करने से हृदय निर्मल होता है और अशुभ संकल्प करने से मलिन होता है।

हे पुत्र ! संकल्प का नाश किये बिना और कोई उपाय नहीं है। जो तू सहस्र वर्ष दारुण तप करे अथवा अपनी नश्वर देह को पाषाण की शिला पर चूर-चूर करे, सामान्य अग्नि या बड़वाग्नि में प्रवेश करे, गड्ढे में गिरे अथवा ब्रह्मा, विष्णु, महेश या बृहस्पति दया करके तुझे उपदेश करें तो भी कल्याण के निमित्त और कोई उपाय नहीं है। जो अनादि, अविनाशी, अविकारी, परम पावन सुख है, वह संकल्प के उपशम से ही पाया जाता है। इसलिए यत्न करके संकल्प का उपशम करो।''

फिर वशिष्ठजी भी वहाँ गये और उन्होंने भी दाशूरपुत्र को उपदेश दिया। उन उपदेशों को सुनकर, उनका मनन-निदिध्यासन करके दाशूरपुत्र परम पद में जगा और शांतात्मा हुआ।

इस सत्संग से आप क्या लेंगे ? केवल पढ़ने-सुनने का पुण्य लेकर ही संतुष्ट हो जायेंगे या नश्वर को पाने का इरादा बदलकर शाश्वत को पाने का रास्ता अपनायेंगे ?

नकारात्मक विचार बने नाश का कारण

*** संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ***

एक आदमी चलते-चलते हिमालय के शांत- सुरम्य इलाके में पहुँचा। वहाँ का वातावरण स्वर्गतुल्य था। वहाँ एक कल्पवृक्ष था। थका होने की वजह से वह उस पेड़ के नीचे आराम करने के लिए लेट गया।

उसने फिर मन-ही-मन सोचा कि 'यहाँ कुछ खाने-पीने के लिए मिल जाता तो कितना अच्छा होता !' उसके ऐसा विचार करते ही वहाँ खाने-पीने की वस्तुएँ आ गयीं। उसने भोजन किया। अब उसने सोचा कि 'सोने के लिए बिस्तर मिल जाता तो कितना अच्छा होता !' बिस्तर भी आ गया। थोड़ी देर में उसे ठंड लगने लगी तो कंबल का विचार किया। कंबल भी आ गया। उसे बड़ा आश्चर्य हो रहा था कि मैं जो-जो सोचता हूँ, सब हो जाता है !

उसे पता नहीं था कि वह कल्पवृक्ष के नीचे बैठा है। 'कहीं यह सब कोई राक्षस तो नहीं भेज रहा है ?' इसी शंका से भयभीत होकर वह सोचने लगा कि 'कहीं रात्रि में राक्षस आकर मुझे खा न जाय...' उसके ऐसा सोचते ही राक्षस आ गया और उसे निगल गया। वह आदमी कल्पवृक्ष के नीचे होते हुए भी अपने नकारात्मक विचार के कारण मौत के मुँह में चला गया।

यह कथा भले कल्पित हो किंतु यह सत्य है कि नकारात्मक विचार ही विनाश का कारण बनते हैं।

मनः एव मनुष्याणां कारणं बंधमोक्षयोः।

'मन ही मनुष्य के बंधन और मोक्ष का कारण है।' शुभ संकल्प और पवित्र कार्य करने से मन शुद्ध होता है, निर्मल होता है तथा मोक्षमार्ग पर ले जाता है। यही मन अशुभ संकल्प और पापपूर्ण आचरण से अशुद्ध हो जाता है तथा जड़ता लाकर संसार के बंधन में बाँधता है।

मत कर रे गर्व-गुमान...

✲ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ✲

जब आपकी प्रवृत्ति प्रभुप्रेरित होती है तो वह भक्ति बन जाती है और जब वासनाप्रेरित होती है तो बंधन बन जाती है।

नारदजी पुरुषार्थ करके काम पर विजय पाने में थोड़े सफल हो गये। आये शिवजी के पास और बोले : ''जैसे आप कामविजयी हैं, ऐसे अब हम भी हो गये हैं।''

शिवजी : ''मुझे बोला तो बोला, दूसरे किसीको बोलना नहीं।''

किंतु सफलता के मद में आये नारदजी गये भगवान नारायण के पास और बोले : ''प्रभु ! जैसे आप कामविजयी हैं, ऐसे अब हम भी हो गये हैं।''

भगवान ने देखा कि शिवजी ने मना किया था फिर भी बता रहे हैं। भगवान ने लीला रची और उनकी माया ने विश्वमोहिनी का रूप ले लिया। उसके स्वयंवर का आयोजन किया गया। नारदजी ने उसका हाथ देखा तो सोचा कि 'अरे, इसको जो वरेगा साक्षात् लक्ष्मीपति हो जायेगा !'

वे गये भगवान नारायण के पास और बोले : ''भगवान ! मेरा रूप ऐसा बना दीजिये, जिससे विश्वमोहिनी से मेरी शादी हो जाय और मेरा मंगल हो।''

शादी करने की वासना भी है और मंगल हो यह प्रार्थना भी है। ऐसे में भगवान क्या करें ? भगवान ने कहा :

जेहि बिधि होइहि परम हित नारद सुनहु तुम्हार।
सोइ हम करब न आन कछु बचन न मृषा हमार॥

'हे नारदजी ! सुनो, जिस प्रकार आपका परम हित होगा, हम वही करेंगे, दूसरा कुछ नहीं। हमारा वचन असत्य नहीं होता।'

(श्रीरामचरित. बा.का.: १३२)

भगवान ने नारदजी का धड़ तो अपने समान बना दिया और चेहरा बंदर का दे दिया।

नारदजी विश्वमोहिनी के स्वयंवर में पधारे। शिवजी ने अपने गणों को स्वयंवर में भेजा कि 'देखो, वहाँ नारायण की क्या लीला हो रही है ?' जहाँ नारदजी बैठे थे, वहाँ उनके दायीं तथा बायीं ओर एक-एक गण बैठ गया।

नारदजी ने सोचा कि 'अब इतने सारे युवक क्यों बैठे हैं ? जब मैं भगवान का वरदान लेकर इतना खूबसूरत होकर आ गया हूँ तो विश्वमोहिनी मुझे ही हार पहनायेगी। फिर ये लोग समय क्यों व्यर्थ गँवा रहे हैं ? विश्वमोहिनी जैसे ही सभा में प्रवेश करेगी और मुझे देखेगी, सीधे ही काम बन जायेगा।'

विश्वमोहिनी ने जब सभा में प्रवेश किया तो चौंकी कि 'क्या मुझसे शादी करने के लिए पिताजी ने बंदर को भी बुलाया है !' उसको झटका लगा। उसने दिशा बदल दी। नारदजी ने सोचा कि 'मेरा तेज न सह सकी इसलिए इसने दिशा बदल दी है।' नारदजी उठकर उस दिशा में गये, जहाँ विश्वमोहिनी गयी थी। वे गण भी साथ में गये। वे हँस रहे थे।

जब विश्वमोहिनी ने किसीको वैजयंती नहीं पहनायी तो भगवान नारायण वहाँ राजा का रूप लेकर जा पहुँचे और विश्वमोहिनी ने उन्हें वैजयंती पहना दी। वे उसे अपने साथ ले गये। यह देखकर नारदजी व्याकुल हो गये।

शिवजी के गणों ने उनसे कहा : ''नारदजी ! जरा आप पानी में अपना मुँह तो देखें।''

बंदर का-सा मुँह देखकर नारदजी कोपायमान हो गये और भगवान नारायण के पास जाकर बोले : ''अच्छा, आपने मेरे साथ ऐसा किया और मेरी होनेवाली पत्नी को आप ले गये तो आपकी पत्नी को भी कोई ले जायेगा। मैं आपको शाप देता हूँ।''

तब भगवान ने नारदजी को समझाया कि ''नारदजी ! आपको कामविजय का अहं हो गया था इसीलिए मुझे यह सब रचना पड़ा। बाकी देखो, वह नगर भी नहीं है और विश्वमोहिनी भी नहीं है। यह केवल मेरी माया का खेल था।''

नारदजी : ''प्रभो ! मैंने आवेश में आकर आपको शाप दे दिया कि कोई आपकी पत्नी को ले जायेगा। किंतु मेरे जैसे चेहरेवाले ही आपकी पत्नी को लाने की सेवा भी पायेंगे और आपके प्रिय हो जायेंगे।''

''नारदजी ! ऐसा ही होगा । **मैं भक्तन को दास...** भक्तों की बात सत्य हो । जो मेरी प्रीति से विभक्त नहीं होते उनकी बात मिथ्या कैसे हो सकती है ?''

वही बात श्रीरामावतार में सत्य हुई। श्रीरामजी की पत्नी सीताजी को रावण ले गया। उन्हें लाने में नारदजी के उस समय के चेहरेवाले साथियों की ही जरूरत पड़ी - हनुमान कंपनी की।

नारदजी की यह कथा हमको सार बात समझाने के लिए है । नारदजी मखौल के नहीं, प्रणाम के पात्र हैं । भगवान का संकल्प हैं देवर्षि नारद। नारदजी से हम क्षमायाचना करते हैं। यदि कोई नारदजी की अवज्ञा करता है या उनको छोटा मानता है तो यह उसका छोटापन है। इन महापुरुष ने अपने इस जीवन-प्रसंग द्वारा यह दिखा दिया कि आपकी किसी भी सफलता का आपको अहं है तो भगवान क्या करते हैं, देखो।

भगवान लीला करके भी हम लोगों को सावधान करते हैं कि सफलता मिले तब भी जहाँ से साफल्य हेतु सत्ता मिलती है, उस अंतरात्मा में गोता मारो। विफलता आये तो उसीको पुकारो कि 'तू मेरी बुद्धि में सत्य भर दे। हमारे हित के लिए तू न जाने क्या-क्या लीलाएँ रचता है... कैसे-कैसे अवतार लेता है... संतों के हृदय में बैठकर कैसी-कैसी प्रेरणाएँ देता है अथवा हमें रोकता-टोकता है और हमारे हृदय में भी कैसे-कैसे प्रोत्साहन भरता है, प्रभु ! तेरी जय हो।'

ॐ शांति ! शांति !! शांति !!!

*

महात्मा तैलंग स्वामी

(भारत सदा से योगियों और संतों-महापुरुषों का देश रहा है । इस पावन धरा पर ऐसे-ऐसे महापुरुष हो गये हैं, जिन्हें सामान्यजन सहसा पहचान भी न सकें । महात्मा तैलंग स्वामी ऐसे ही एक योगी पुरुष थे । वे २८० साल तक इस वसुंधरा पर विद्यमान रहे । यहाँ प्रस्तुत हैं उनके दिव्य जीवन के कुछ चुने हुए प्रेरक प्रसंग :)

महात्मा तैलंग स्वामी दक्षिण भारत में विजना जनपद के होलिया ग्राम में सन् १६०७ ई. में पौष मास की शुक्लपक्ष की एकादशी को इस धरा पर अवतरित हुए। उनके पिता श्री नृसिंहधर गाँव के जमींदार थे और माता विद्यावती भगवान शंकर की अनन्य भक्त थीं। स्वामीजी के जन्म से पूर्व उनकी माता को सपने में कभी-कभी भगवान शंकर दिखायी देते थे।

नामकरण-संस्कार के समय माता ने बालक का नाम शिवराम और पिता ने वंश परंपरानुसार तैलंगधर रखा। बाल्यकाल से ही उनमें चंचलता का अभाव था। उनकी हमउम्र के बालक खेलते-कूदते, हुड़दंग मचाते किंतु वे उस समय मंदिर-प्रांगण में अकेले बैठे-बैठे एकटक कभी आकाश की ओर तो कभी शिवलिंग को निहारा करते और कभी-कभी बरगद के वृक्ष के नीचे ध्यानस्थ हो जाते थे।

किशोर शिवराम ने एक दिन माँ से प्रश्न किया : ''माँ ! भगवान पूजा से प्रसन्न होते हैं या भक्ति से ?''

माता विद्यावती ने समझाते हुए कहा : ''बेटा ! भक्ति पूजा से उत्पन्न होती है और सेवा से दृढ़ होती है। इस प्रकार साधक के आध्यात्मिक जीवन का विकास होता है। 'गीता' में भगवान श्रीकृष्ण ने

कहा है :

पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति।
तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मनः ॥

'जो कोई भक्त मेरे लिए प्रेम से पत्र, पुष्प, फल, जल आदि अर्पण करता है, उस शुद्धबुद्धि निष्काम प्रेमी भक्त का प्रेमपूर्वक अर्पण किया हुआ वह पत्र-पुष्पादि मैं सगुणरूप से प्रकट होकर प्रीतिसहित खाता हूँ।' **(श्रीमद्भगवद्गीता : ९.२६)**

अगर सरल हृदय से शुद्ध भक्ति की जाय तो भगवान उसे ग्रहण करते हैं। शुद्ध भक्ति के लिए साधना करनी पड़ती है, तब ज्ञान प्राप्त होता है और यह ज्ञान सद्गुरु प्रदान करते हैं। सद्गुरु से ज्ञान प्राप्त करने पर ही साधना सफल होती है।''

वास्तव में शिवराम को आध्यात्मिक मार्गदर्शन देनेवाली प्रथम गुरु उनकी माँ ही थीं।

शास्त्र-वचन भी है कि **'वह माता माता नहीं, वह पिता पिता नहीं जो पुत्र को भगवान के रास्ते न लगाये।'**

माँ से भगवद्भक्ति एवं आध्यात्मिक ज्ञान की बातें सुनते-सुनते शिवराम का सरल हृदय गुरु के लिए तड़प उठा। एक दिन उन्होंने माँ से कहा : ''माँ ! जब आप मुझे इतनी ज्ञान की बातें बताती हो तो मुझे वह ज्ञान क्यों नहीं दे देतीं ? माँ से बढ़कर भला मुझे कौन गुरु मिलेगा ?''

माता विद्यावती ने कहा : ''तुम्हारे जो गुरु हैं, वे समय आने पर तुम्हें अवश्य अपने पास बुला लेंगे या स्वयं तुम्हारे पास आ जायेंगे। वत्स ! इसके लिए तुम्हें प्रतीक्षा करनी पड़ेगी।'' इसी प्रकार माँ अपने बेटे का ज्ञान बढ़ाती रहीं।

'इस क्षणभंगुर-नश्वर देह का कोई भरोसा नहीं। जो अनश्वर हैं, चिरस्थायी हैं, उन्हीं परमात्मदेव के अनुसंधान में अपना ध्यान केन्द्रित करूँगा।' - यह निश्चय कर तैलंग स्वामी ने विवाह नहीं किया, आजीवन ब्रह्मचारी रहे।

सन् १६४७ ई. में उनके पिता का निधन हो गया। उस समय शिवराम की उम्र ४० वर्ष थी। सन् १६५७ ई. में माँ विद्यावती भी चल बसीं। उनकी चिता को अग्नि देने के बाद सब लोग चले गये, पर शिवराम वहीं बैठे रहे। भाई तथा गाँव के बुजुर्गों ने उनसे घर लौटने का आग्रह किया।

शिवराम ने कहा : ''इस नश्वर शरीर के लिए एक मुट्ठी भोजन काफी है। वह कहीं-न-कहीं से मिल ही जायेगा। रहने के लिए इससे उपयुक्त स्थान अन्यत्र कहीं नहीं है।''

वे चिता की राख शरीर पर मलकर वहीं बैठे रहे। उनके छोटे भाई श्रीधर ने उनके लिए वहाँ एक कुटिया बनवा दी, जिसमें वे लगभग २० वर्ष तक साधनारत रहे।

सन् १६७९ ई. की एक शाम को वहाँ पर एक संन्यासी का आगमन हुआ। उन्हें देखकर शिवराम को माँ के वचनों की याद आ गयी। ये महापुरुष पंजाब के पटियाला जिले में रहनेवाले भगीरथ स्वामी थे। शिवराम ने अनुभव किया कि वे ज्ञान के अपूर्व भंडार और असाधारण व्यक्तित्व के धनी हैं।

शिवराम ने कहा : ''महाराज ! मुझे अपना शिष्य बना लें। मैं आपकी सेवा करूँगा और आपके प्रवचनों से अपने ज्ञान की वृद्धि करूँगा।''

भगीरथ स्वामी : ''तुम मुझसे दीक्षा लेना चाहते हो पर अभी उसका समय नहीं आया है। समय आने पर वह संपन्न हो जायेगी।''

शिवराम की उम्र ७२ वर्ष हो चुकी थी। उन्होंने कहा : ''वह समय कब आयेगा, महाराज ? दीक्षा के लिए मेरा मन अत्यंत व्याकुल हो उठा है। इस समय आप जैसे ज्ञानी महात्मा मुझे अस्वीकार कर देंगे तो मैं कहाँ जाऊँगा ?''

शिवराम की तीव्र जिज्ञासा व आत्मसाक्षात्कार के लिए सच्ची तड़प देखकर भगीरथ स्वामी उन्हें तीर्थाटन में अपने साथ रखकर मार्गदर्शन देते रहे। राजस्थान में ब्रह्मपुष्कर (जहाँ ब्रह्माजी ने यज्ञ किया था) में वे लंबे समय तक साधनारत रहे। सन् १६८५ ई. में यहीं पर भगीरथ स्वामी ने उन्हें दीक्षा देकर बीजमंत्र प्रदान किया तथा उनका नाम 'गणपति' रखा। दीक्षा के पश्चात् उन्हें कई गुह्य रहस्यों की जानकारी होने लगी। १० वर्ष पश्चात् सहसा स्वामीजी ने गणपतिजी को अपने निकट बुलाकर कहा : ''अब तुम पूर्ण हो गये हो। मेरे पास तुम्हें देने को कुछ भी शेष

नहीं रहा है। तुममें शक्ति का पूर्ण विकास हो गया है। भगवत्कृपा से तुम्हें जो कुछ प्राप्त हुआ है, अब उसका उपयोग लोक-कल्याण के लिए करो और अपनी शक्ति पर कभी घमंड मत करना।''

सन् १६९५ ई. में भगीरथ स्वामी ब्रह्मलीन हो गये। इसके बाद गणपति स्वामी पुष्कर से चलकर पुरी आये। नवंबर १६९७ ई., कार्तिक शुक्ल पंचमी को वे रामेश्वर मंदिर आये। इस दिन यहाँ देश के कोने-कोने से बड़ी संख्या में श्रद्धालु-भक्त दर्शन के लिए आते हैं। होलिया गाँव से आये कुछ लोगों ने उन्हें पहचान लिया और उनसे अपने साथ गाँव चलने की जिद करने लगे। इस पर उन्होंने कहा : ''आप लोग मिल गये, मुझे होलिया के दर्शन हो गये। श्रीधर को मेरा आशीर्वाद कह दीजियेगा।''

इसके बाद स्वामीजी के जीवन में ऐसी कई घटनाएँ घटित हुईं जो उनके योग-सामर्थ्य एवं जनहित की भावना को दर्शाती हैं :

(१) दूसरे दिन वे मेले में विचरण कर रहे थे। सहसा किसीके रोने-चीखने की आवाज सुनायी दी। पास जाने पर उन्होंने देखा कि एक व्यक्ति के शव को लोग रस्सी से बाँध रहे हैं।

गणपति स्वामी ने पूछा : ''इसे क्यों बाँध रहे हो ?'' उनमें से एक व्यक्ति ने जवाब दिया : ''स्वामीजी ! गर्मी के कारण यह चक्कर खाकर गिर पड़ा और कुछ देर पहले इसकी मृत्यु हो गयी। अब श्मशान ले जाने के लिए इसे रस्सी से बाँधा जा रहा है।''

स्वामीजी ने कहा : ''आप लोगों को मतिभ्रम हो गया है। यह तो जीवित है। कहीं जीवित व्यक्ति को श्मशान ले जाते हैं ?''

यह सुनते ही रोनेवाले चुप हो गये, शव बाँधनेवालों के हाथ रुक गये। स्वामीजी ने जैसे ही कमंडलु से पानी निकालकर शव पर छिड़का, वह व्यक्ति जीवित हो गया।

(२) सन् १७०१ ई. की बात है : गुजरात के पोरबंदर में स्थित सुदामापुरी में एक ब्राह्मण ने उन्हें पहचान लिया। रामेश्वर में मृत व्यक्ति के जीवित होने की घटना से प्रभावित हुए उस ब्राह्मण ने गद्‌गद हो स्वामीजी के चरण पकड़ लिये तथा अनुनय-विनय कर अपने यहाँ आतिथ्य ग्रहण करने हेतु राजी कर लिया। स्वामीजी ने कुछ दिन बाद कहा : ''पंडितजी ! मैं आपकी सेवा से संतुष्ट हूँ। इस सेवा के बदले मुझसे क्या चाहते हो ?''

ब्राह्मण ने कहा : ''महाराज ! घर की हालत तो आप देख ही रहे हैं। हम अपनी इच्छानुसार आपकी सेवा नहीं कर पा रहे हैं। अपनी दशा सुधारने के लिए व्रत रखा, तीर्थयात्रा की, पर विशेष लाभ नहीं हुआ। आपका आशीर्वाद मिल जाय तो हमारी स्थिति सुधर जाय।''

स्वामीजी ने कहा : ''अब तक तुमने जो कुछ किया, वह सब मन से नहीं किया। ब्राह्मण हो पर त्रिकाल संध्या नहीं करते। पूजा करने बैठते हो तो मन कहीं और दौड़ता है।''

पंडित ने विनयपूर्वक कहा : ''स्वामीजी ! हम ठहरे गृहस्थ। हमारे मन में धन की, संतान की, रोग-शोक की, परिवार की चिंता जड़ जमाये हुए है। इसलिए ईश्वर की आराधना भी मन लगाकर नहीं कर पाते। ऐसी दशा में आप ही हमें इन चिंताओं से मुक्ति दिला सकते हैं।''

गणपति स्वामी ने कहा : ''वत्स ! मैं पहले से ही जान चुका था कि तुम निःस्वार्थ भाव से मेरी सेवा नहीं कर रहे हो। इसके बदले मुझसे कुछ पाने की लालसा रखते हो। अब तुम एकाग्र मन से गायत्री-पाठ और त्रिकाल संध्या करते रहो। इसका फल तुम्हें शीघ्र ही प्राप्त होगा।''

उक्त ब्राह्मण ने स्वामीजी की आज्ञानुसार संध्या, पाठ आदि किया, जिससे उसको शीघ्र ही राज्य की ओर से भूमि प्राप्त हुई और उसकी अर्थ-चिंता व संतान-हीनता का भी निवारण हुआ।

(क्रमशः)

❊ 'ऋषि प्रसाद' पत्रिका के सभी सेवादारों तथा सदस्यों को सूचित किया जाता है कि 'ऋषि प्रसाद' पत्रिका की सदस्यता के नवीनीकरण के समय पुराना सदस्यता क्रमांक/रसीद-क्रमांक एवं सदस्यता 'पुरानी' है - ऐसा लिखना अनिवार्य है। जिसकी रसीद में ये नहीं लिखे होंगे, उस सदस्य को नया सदस्य माना जायेगा।

❊ नये सदस्यों को सदस्यता के अंतर्गत वर्तमान अंक के अभाव में उसके बदले एक पूर्व प्रकाशित अंक भेजा जायेगा।

एकादशी माहात्म्य

[पापांकुशा/पाशांकुशा एकादशी : २४ अक्टूबर]

युधिष्ठिर ने पूछा : मधुसूदन ! अब आप कृपा करके यह बताइये कि आश्विन मास के शुक्लपक्ष में किस नाम की एकादशी होती है और उसका माहात्म्य क्या है ?

भगवान श्रीकृष्ण बोले : राजन् ! आश्विन के शुक्लपक्ष में जो एकादशी होती है, वह 'पापांकुशा' नाम से विख्यात है । वह सब पापों को हरनेवाली, स्वर्ग और मोक्ष प्रदान करनेवाली, शरीर को नीरोग बनानेवाली तथा सुंदर स्त्री, धन एवं मित्र देनेवाली है । यदि अन्य कार्य के प्रसंग से भी मनुष्य एकमात्र इस एकादशी का उपवास कर ले तो उसे कभी यम-यातना नहीं प्राप्त होती ।

राजन् ! एकादशी के दिन उपवास और रात्रि-जागरण करनेवाले मनुष्य अनायास ही दिव्य रूपधारी, चतुर्भुजी, गरुड़ की ध्वजा से युक्त, हार से सुशोभित और पीताम्बरधारी होकर भगवान विष्णु के धाम को जाते हैं । राजेन्द्र ! ऐसे पुरुष मातृपक्ष, पितृपक्ष तथा पत्नी के पक्ष की दस-दस पीढ़ियों का उद्धार कर देते हैं ।

एकादशी के दिन संपूर्ण मनोरथ की प्राप्ति के लिए मुझ वासुदेव का पूजन करना चाहिए । जितेन्द्रिय मुनि चिरकाल तक कठोर तपस्या करके जिस फल को प्राप्त करता है, वह फल उस दिन भगवान गरुड़ध्वज को प्रणाम करने से ही मिल जाता है ।

जो पुरुष उस दिन सुवर्ण, तिल, भूमि, गौ, अन्न, जल, जूते और छाते का दान करता है, वह कभी यमराज को नहीं देखता । नृपश्रेष्ठ ! दरिद्र पुरुष को भी चाहिए कि वह स्नान, जप-ध्यान आदि करने के बाद यथाशक्ति होम, यज्ञ तथा दान वगैरह करके अपने प्रत्येक दिन को सफल बनाये ।

जो होम, स्नान, जप, ध्यान और यज्ञ आदि पुण्यकर्म करनेवाले हैं, उन्हें भयंकर यम-यातना नहीं देखनी पड़ती । लोक में जो मानव दीर्घायु, धनाढ्य कुलीन और नीरोग देखे जाते हैं, वे पहले के पुण्यात्मा हैं । पुण्यकर्ता पुरुष ऐसे ही देखे जाते हैं । इस विषय में अधिक कहने से क्या लाभ, **मनुष्य पाप करने से दुर्गति में पड़ते हैं और धर्मकार्यों से स्वर्ग में जाते हैं ।**

राजन् ! तुमने मुझसे जो कुछ पूछा था, उसके अनुसार 'पापांकुशा एकादशी' के माहात्म्य का मैंने वर्णन किया ।

('पद्म पुराण' से)

त्यागात् शांतिरनंतरम्...

विषय-भोगों का परिणाम अंत में दुःख ही होता है - संताप दुःख, स्मृति दुःख, परिणाम दुःख - क्लेश-ही-क्लेश है... बीच में जरा-सा मजा, बाकी तो आगे-पीछे दुःख-ही-दुःख । जबकि ईश्वरीय सुखप्राप्ति के आरंभ में थोड़ी-सी तितिक्षा, पीछे मौज-ही-मौज । यहाँ भी मौज, जाने के बाद भी मौज ।

वासनापूर्ति में तो यहाँ भी तनाव, पराधीनता, शक्तिहीनता, जड़ता और अंत में भी नरकों में भटको । जबकि वासना-निवृत्ति में स्वाधीनता, शक्ति-संपन्नता, प्रसन्नता, उदारता और आत्ममस्ती । भोगी उदार नहीं हो सकता, उदार तो ज्ञानी होता है, त्यागी होता है । जीवन में त्याग नहीं हो तो उदारता कहाँ से आयेगी ? जितने अंश में त्याग है उतने अंश में उदारता निखरेगी ।

त्यागात् शांतिरनंतरम् । **(गीता : १२.१२)**

त्याग से निरंतर शांति मिलती है । संग्रह से निरंतर तनाव होता है । यहाँ तक कि अपने देहाध्यास का भी त्याग कर दो । मन-इन्द्रियाँ, बुद्धि को भी प्रकृति का मानकर त्याग दो । *- संत श्री आसारामजी बापू*

✻ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ✻

रीछ की योनि से मुक्ति

एक बार गुरु गोविंदसिंह के यहाँ एक कलंदर आया। जो रीछ को पकड़कर नचाते हैं, उन्हें कलंदर (मदारी) कहते हैं।

गुरु गोविंदसिंह ने कहा : ''जिसको तू नचा रहा है, वह तेरा बाप है।''

कलंदर : ''मैं मनुष्य हूँ, यह रीछ मेरा बाप कैसे ?''

''यह तेरा पिछले जन्म का बाप है। **यह गुरु के द्वार तो जाता था लेकिन गुरु का होकर सेवा नहीं करता था। अपना अहं सजाने के लिए, उल्लू सीधा करने के लिए सेवा करता था, इसलिए इसे रीछ बनना पड़ा है।**

एक दिन सत्संग पूर्ण होने के बाद यह प्रसाद बाँट रहा था। इतने में वहाँ से किसान लोग बैलगाड़ियाँ लेकर निकले। उन्हें गुरुजी के दर्शन हो गये। उन्होंने सोचा : 'गुरुदेव की वाणी तो कान में नहीं पड़ी किंतु दर्शन हो गये। अब गुरुद्वार का एक-एक कौर प्रसाद लेते जायें।' वे बैलगाड़ी से उतरे, बैलों को एक ओर खड़ा किया और इससे बोले : ''हमें प्रसाद दे दो।''

इसने उधर देखा ही नहीं। वे भले गरीब किसान थे लेकिन भक्त थे। उन्होंने दो-तीन बार कहा किंतु प्रसाद देना तो दूर बल्कि इसने कहा : ''क्या है ? काले-कलूट रीछ जैसे, बार-बार प्रसाद माँग रहे हो ? नहीं है प्रसाद।''

वे बोले : ''अरे भाई ! एक-एक कण ही दे दो। जिनके हृदय में परमात्मा प्रकट हुए हैं, ऐसे गुरुदेव की नजर प्रसाद पर पड़ी है। **ब्रह्मज्ञानी की दृष्टि अमृतवर्षी।**[1] थोड़ा-सा ही दे दो।''

इसने कहा : ''क्या रीछ की तरह 'दे-दे' कर रहे हो ? जाओ, नहीं देता।''

उनमें एक बूढ़ा-बुजुर्ग भी था। वह बोला : ''हमें गुरु के प्रसाद से वंचित करते हो ? हम तो रीछ नहीं हैं, किंतु जब गुरुसाहब तुम्हें रीछ बनायेंगे तब पता चलेगा।''

किसान लोग बद्दुआ देकर चले गये और कालांतर में तेरा बाप मरकर यह रीछ बना। फिर भी इसने गुरुद्वार की सेवा की थी, उसीका फल है कि कई रीछ जंगल में भटकते रहते हैं किंतु यह तेरे घर आया और यहाँ सिर झुकाने का इसे अवसर मिला है। लाओ, अब इसका गुनाह माफ करते हैं।''

गुरुदेव ने पानी छाँटा। कलंदर ने देखा कि गुरुसाहब की कृपा हुई। रीछ के कर्म कट गये और वह मर गया। रीछ की योनि से उसकी मुक्ति हो गयी।

मन का ही खाना तो देशी घी के लड्डू क्यों नहीं खाना ?

आप जैसे विचार करते हैं, वैसे ही विचार वातावरण में से खिंचकर आपके पास आ जाते हैं। जमीन में जैसा बीज बोओ, उसी प्रकार का पोषण वातावरण और धरती से मिलता है एवं बीज फलित होता है। ऐसे ही यदि आपका दिल प्रफुल्लित और खुश होता है तो वातावरण में से भी प्रफुल्लता और प्रसन्नता आती है। ...तो हम बढ़िया विचार क्यों न करें ?

मैंने एक कहानी सुनी है :

दो मित्र थे। एक मुसलमान था और दूसरा हिन्दू। दोनों साधु बन गये और यात्रा पर निकले। यात्रा करते-करते शाम हुई। किसी गाँव में पड़ाव डाला। आसपास में कोई भक्त नहीं था इसलिए दोनों ने मानसिक भोजन बनाया। हिन्दू साधु ने मानसिक भोजन में लड्डू, पूड़ियाँ और दाल-चावल बनाये तथा मन-ही-मन

(१) ब्रहम गिआनी की द्रिसटि अंम्रितु बरसी। (सुखमनी साहिब)

भोग लगाकर खाने लगा। मुसलमान ने भी मानसिक भोजन बनाकर खाया तो वह 'तौबा' पुकारने लगा, उसकी आँखों में पानी भी आ गया।

हिन्दू साधु ने पूछा : ''ऐसा तो क्या बनाकर खाया कि आँखों में से पानी आ रहा है... तौबा पुकार रहे हो ?''

मुसलमान साधु : ''मैंने कढ़ी बनायी थी। उसमें हरी मिर्च ज्यादा डल गयी।''

हिन्दू साधु : ''जब मन का ही खाना बनाना था तो देशी घी के लड्डू क्यों नहीं बनाये ?''

ऐसे ही जब सारा संसार मन के विचारों से ही चल रहा है तो परेशानी को क्यों पैदा करना ? खुशी पैदा करो, आनंद उभारो, माधुर्य लाओ । मन का माधुर्य तन के लिए भी मधुर वातावरण बना देता है।

भगवन्नामामृत

अनेक संतों-महापुरुषों तथा भगवद्भक्तों ने भगवन्नाम की महिमा का जयघोष किया है । कुछ संतों की हरिनाम-महिमा विषयक सुंदर वचनमाला यहाँ दी गयी है :

संत निवृत्तिनाथजी भगवन्नाम के विषय में कहते हैं : ''एक तत्त्व हरि सब जगह विद्यमान है, ऐसा सब शास्त्र कहते हैं । इसलिए जो नित्य हरिनाम का उच्चारण करता है, उसको मृत्यु का भय नहीं रहता । जिस हरिनाम के उच्चारण से यमराज और काल डर जाते हैं, ऐसा हरिनाम जपना कितना आसान है। हरिनाम जपो, इससे आवागमन का चक्र नष्ट हो जायेगा, जन्म-मृत्यु का बंधन छूट जायेगा।''

संत ज्ञानेश्वरजी कहते हैं : ''प्रजापति जब सृष्टि रचते हैं तब भगवन्नाम की आवृत्ति किया करते हैं और तभी सृष्टि-रचना में समर्थ होते हैं।

जिन भगवान से ब्रह्माजी उत्पन्न हुए उन भगवान को आरंभ में उन्होंने नहीं पहचाना और सृष्टि रचने चले । पर जब सृष्टि नहीं रच सके, तब उन्होंने भगवन्नाम लिया और नाम लेने से सृष्टि रचने में समर्थ हो गये ।

वैकुंठ लोक में तो कोई विरला ही जा सकता है, पर भगवन्नाम-प्रेमी महात्मा तो जहाँ-जहाँ जाते हैं उस स्थान को ही वैकुंठ बना देते हैं । इस प्रकार नाम-भजन की महिमा से वे संपूर्ण विश्व को पवित्र बनाते हैं । भगवान के जिस नाम को पाने के लिए हजारों जन्मों तक उनकी सेवा करनी होती है, वह नाम उन भक्तों की जिह्वा पर निरंतर नृत्य करता रहता है । वे भगवद्भक्त भगवान का गुणगान करके इतने अधिक तृप्त होते हैं कि देश और काल को भूलकर नाम-कीर्तन के सुख से स्वयमेव ही सुखी बने रहते हैं ।

जहाँ नाम-संकीर्तन होता है और परमेश्वर के अनन्य भक्तों की उपस्थिति होती है, ऐसे सत्संग में हमारे अनंत जन्मों की पापराशि नष्ट हो जाती है। अनंत जन्मों से हम भगवान के लिए तप करते हैं, अगर सत्संग में आकर नाम-संकीर्तन में भाग लिया जाय तो कम समय में परमेश्वर-प्राप्ति के सब मार्ग सुलभ होते हैं ।''

सर्वरोगनाशक धर्मराज व्रत

कोई भी रोग किसी भी औषध-उपचार से ठीक न हो रहा हो तो प्रातः स्नानादि के पश्चात् पवित्रावस्था में रहकर **'ॐ क्रौं ह्रीं आं वैवस्वताय धर्मराजाय भक्तानुग्रहकर्त्रे नमः ।'** इस मंत्र का पूर्णतया अभ्यास करके मन-ही-मन अखंड जप करते रहें, इससे संपूर्ण पाप, ताप और रोग दूर होते हैं।

कार्तिक मास की महिमा

[कार्तिक मास : २९ अक्टूबर से २६ नवंबर]

सूतजी ने महर्षियों से कहा : पापनाशक कार्तिक मास का बहुत ही दिव्य प्रभाव बतलाया गया है। यह मास भगवान विष्णु को सदा ही प्रिय तथा भोग और मोक्षरूपी फल प्रदान करनेवाला है।

हरिजागरणं प्रातःस्नानं तुलसिसेवनम्।
उद्यापनं दीपदानं व्रतान्येतानि कार्तिके ॥

'रात्रि में भगवान विष्णु के समीप जागरण, प्रातःकाल स्नान करना, तुलसी की सेवा में संलग्न रहना, उद्यापन करना और दीप-दान देना - ये कार्तिक मास के पाँच नियम हैं।'

(पद्म पुराण, उ.खंड : ११७.३)

इन पाँचों नियमों का पालन करने से कार्तिक मास का व्रत करनेवाला पुरुष व्रत के पूर्ण फल का भागी होता है। वह फल भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाला बताया गया है।

मुनिश्रेष्ठ शौनकजी ! पूर्वकाल में कार्तिकेयजी के पूछने पर महादेवजी ने कार्तिक व्रत और उसके माहात्म्य का वर्णन किया था, उसे आप सुनिये।

महादेवजी ने कहा : बेटा कार्तिकेय ! कार्तिक मास में प्रातःस्नान पापनाशक है। इस मास में जो मनुष्य दूसरे के अन्न का त्याग कर देता है, वह प्रतिदिन कृच्छ्रव्रत[1] का फल प्राप्त करता है। कार्तिक में शहद का सेवन, काँसे के बर्तन में भोजन और मैथुन का विशेषरूप से परित्याग करना चाहिए। चंद्रमा और सूर्य के ग्रहणकाल में ब्राह्मणों को पृथ्वी-दान करने से जिस फल की प्राप्ति होती है, वह फल कार्तिक में भूमि पर शयन करनेवाले पुरुष को स्वतः प्राप्त हो जाता है।

कार्तिक मास में ब्राह्मण दंपति को भोजन कराकर उनका पूजन करें। अपनी क्षमता के अनुसार कंबल, ओढ़ना-बिछौना एवं नाना प्रकार के रत्न व वस्त्रों का दान करें। जूते और छाते का भी दान करने का विधान है।

कार्तिक मास में जो मनुष्य प्रतिदिन पत्तल में भोजन करता है, वह १४ इन्द्रों की आयुपर्यंत कभी दुर्गति में नहीं पड़ता। उसे समस्त तीर्थों का फल प्राप्त हो जाता है तथा उसकी संपूर्ण कामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं।

(पद्म पुराण, उ.खंड : अध्याय १२०)

कार्तिक में तिल-दान, नदी-स्नान, सदा साधु पुरुषों का सेवन और पलाश-पत्र से बनी पत्तल में भोजन मोक्ष देनेवाला है। कार्तिक मास में मौनव्रत का पालन, पलाश के पत्तों में भोजन, तिलमिश्रित जल से स्नान, निरंतर क्षमा का आश्रय और पृथ्वी पर शयन - इन नियमों का पालन करनेवाला पुरुष युग-युग के संचित पापों का नाश कर डालता है।

संसार में, विशेषतः कलियुग में वे ही मनुष्य धन्य हैं, जो सदा पितरों के उद्धार के लिए भगवान श्रीहरि का सेवन करते हैं। वे हरिभजन के प्रभाव से अपने पितरों का नरक से उद्धार कर देते हैं। यदि पितरों के उद्देश्य से दूध आदि के द्वारा भगवान विष्णु को स्नान कराया जाय तो पितर स्वर्ग में पहुँचकर कोटि कल्पों तक देवताओं के साथ निवास करते हैं।

जो मुख में, मस्तक पर तथा शरीर पर भगवान की प्रसादभूता तुलसी को प्रसन्नतापूर्वक धारण करता है, उसे कलियुग नहीं छूता। कार्तिक मास में तुलसी का पूजन महान पुण्यदायी है। प्रयाग में स्नान करने से, काशी में मृत्यु होने से और वेदों का स्वाध्याय करने से जो फल प्राप्त होता है वह सब तुलसी के पूजन से मिल जाता है।

जो द्वादशी को तुलसीदल व कार्तिक में आँवले का पत्ता तोड़ता है वह अत्यंत निंदित नरकों में पड़ता है। जो कार्तिक में आँवले की छाया में बैठकर भोजन

(१) इसमें पहले दिन निराहार रहकर दूसरे दिन पंचगव्य पीकर उपवास किया जाता है।

करता है, उसका वर्षभर का अन्न-संसर्गजनित दोष (जूठा या अशुद्ध भोजन करने से लगनेवाला दोष) नष्ट हो जाता है।

लक्ष्मी-प्रदायक कोजागर व्रत

(शरद/कोजागरी पूर्णिमा : २७ अक्टूबर)

आश्विन मास की पूर्णिमा को रखा जानेवाला व्रत 'कोजागर व्रत' के नाम से जाना जाता है। इस दिन मनुष्य विधिपूर्वक स्नान करके उपवास रखे और जितेंद्रिय भाव से रहे। धनवान मनुष्य ताँबे अथवा मिट्टी के कलश पर वस्त्र से ढँकी हुई स्वर्णमयी लक्ष्मी की प्रतिमा को स्थापित करके भिन्न-भिन्न उपचारों से उनकी पूजा करे। तदनंतर सायंकाल में चंद्रोदय होने पर सोने, चाँदी अथवा मिट्टी के घृतपूर्ण १०० दीपक जलाये। इसके बाद घी मिश्रित खीर तैयार करे और बहुत-से पात्रों में डालकर उसे चंद्रमा की चाँदनी में रखे। जब एक पहर बीत जाय, तब लक्ष्मीजी को सारी खीर अर्पण करे। तत्पश्चात् भक्तिपूर्वक सात्त्विक ब्राह्मणों को इस प्रसादरूपा खीर का भोजन कराये और उनके साथ ही मांगलिक गीत गाकर तथा मंगलमय कार्य करते हुए रात्रि-जागरण करे। तदनंतर अरुणोदय-काल में स्नान करके लक्ष्मीजी की वह स्वर्णमयी मूर्ति आचार्य को अर्पित करे।

इस रात्रि के निशीथ काल (मध्यरात्रि) में देवी महालक्ष्मी अपने करकमलों में वर और अभय लिये संसार में विचरती हैं और मन-ही-मन संकल्प करती हैं कि 'इस समय भूतल पर कौन जाग रहा है? जागकर मेरी पूजा में लगे हुए उस मनुष्य को मैं आज धन दूँगी।'

प्रति वर्ष किया जानेवाला यह व्रत लक्ष्मीजी को संतुष्ट करनेवाला है। इससे प्रसन्न हुईं माँ लक्ष्मी इस लोक में समृद्धि देती हैं और शरीर का अंत होने पर परलोक में सद्गति प्रदान करती हैं। *('नारदपुराण' से)*

शुभ दीपावली

सज गये हैं दीप-दीप द्वार पर, मुँडेर पर।
जुगनुओं की ज्यों बरात चल रही हो घेरकर॥
ज्ञान-दीप अंतर के आँगन में जला दो।
जीवन ही सारा कर उठे जगर-मगर॥

भूमि के लिए एक उत्तम वरदान

गाय के सींग की पहचान और खाद बनाने की विधि :

(१) गाय, बैल के सींगों के ढेर में से गाय के सींगों की पहचान इस बात से करनी चाहिए कि गाय के प्रत्येक बछड़े के जन्म पर गाय के सींग के ऊपर एक गोल चक्र (सर्कल) उभरता है।

(२) खुले आकाश के नीचे जहाँ बाहर से पानी का बहाव न हो तथा पेड़ की छाया या मूल अथवा केंचुए न हों, ऐसी जगह देखकर वहाँ २ फुट लंबा, २ फुट गहरा और २ फुट चौड़ा गड्ढा करें।

(३) इस कार्य के लिए पूर्णिमा के दिन (शरद पूर्णिमा का दिन सर्वोत्तम) उस गड्ढे का एक बालिश्त अर्थात् ९ इंच जितना भाग गाय के गोबर से पाट दें। फिर मृत दूभनी गाय के सींग में गोबर भरकर उसका मुँहवाला हिस्सा इस गोबर में फँसा दें और नोकवाला सिरा ऊपर रखें। इस तरह इस प्रथम परत में पाँच-छः सींगों को हम रोप सकते हैं। फिर उस पर पहले जितना ही गाय का गोबर पाट दें और उस पर गाय के सींगों की दूसरी परत को मुँह नीचे और नोकवाला सिरा ऊपर, इस तरह से रोप दें। अब गड्ढे के बाकी बचे हुए हिस्से को भी गाय के गोबर से पाट दें और भूमि को समतल कर दें। इस पर पहचान के लिए निशान लगा दें और उसकी रक्षा करें।

(४) बारह सींग प्राप्त न हों तो भी जितने मिलें उतने से ही खाद बनायें।

(५) छः माह के बाद अमावस्या के दिन उन्हें बाहर निकालें। अगर इस दिन यह कार्य संभव न हो पाये तो कृष्णपक्ष में निकालें। सींग में से पाउडर बाहर निकालकर उसे मिट्टी या काँच के बर्तन में डालकर

बर्तन का मुँह बाँध दें और उसे ठंडी जगह पर रखें। मध्यम आकारवाले सींग में से करीब ३५ ग्राम तक पाउडर निकलता है।

(६) घोल बनाने के लिए जितने लीटर पानी लें उतने ही ग्राम पाउडर उसमें मिलाकर किसी बड़े ड्रम में एकाध घंटे तक घड़ी की सुइयों से विपरीत (एंटी क्लॉकवाइज) दिशा में मथनी से मथें। मथते समय ड्रम में नीम की हरी पत्तियाँ कूटकर डालने से उसमें जंतुनाशक के गुण आ जाते हैं।

(७) प्रति एकड़ पैंतीस लीटर के हिसाब से यह घोल बुवाई के समय, जब जमीन गीली हो और कड़ी धूप न हो तब जमीन पर छिड़कें, पौधों पर नहीं।

इस खाद के बड़े भारी लाभ किसान भाइयों ने अनुभव किये हैं। आप भी भूमि के लिए वरदानस्वरूप सिद्ध होनेवाली इस खाद को बनाइये और इस प्रकार की स्वदेशी खादों का उपयोग कर अपनी खेती को सुजलाम्-सुफलाम् बनाइये। इस वर्ष इसे बनाने हेतु शुभ दिन है २७ अक्टूबर (शरद पूर्णिमा) का दिन!

हर पूर्णिमा को भी यह प्रयोग किया जा सकता है। करीब ३५ ग्राम पाउडर से ३५ लीटर भूमि-उर्वरक और कीटनाशक बनाने की अपनी इस सुंदर शास्त्रीय युक्ति का किसान मित्र फायदा उठायें। सभी पाठक किसान भाइयों तक खाद बनाने की इस विधि को पहुँचाने की सेवा कर सकते हैं।

कंबल-वितरण हेतु समितियों को सूचना

भारतभर में श्री योग वेदांत सेवा समिति की विभिन्न शाखाएँ सदैव जनकल्याण की विविध सत्प्रवृत्तियाँ करती रहती हैं। इसी शृंखला में हर वर्ष सर्दियों में गरीबों, जरूरतमंदों को कंबल भी वितरित किये जाते हैं। आश्रम की समितियाँ वितरण हेतु रियायती दरवाले एवं आकर्षक डिजाइन से युक्त कंबल निम्न में से किसी भी पते पर संपर्क कर मँगवा सकती हैं।

(१) सत्साहित्य विभाग, संत श्री आसारामजी आश्रम, संत श्री आसारामजी बापू आश्रम मार्ग, अमदावाद-५. दूरभाष क्र. : (०७९) २७५०५०१०-११.

(२) सत्साहित्य विभाग, संत श्री आसारामजी आश्रम, राष्ट्रीय महामार्ग क्र. ८ से तीन कि.मी. अंदर, रजोकरी गाँव, नई दिल्ली- ३८. दूरभाष क्र. : (०११) २५७६४१६१.

अम्लपित्त

ऋतु-प्रभाववश चतुर्मास के पहले दो महीनों में शरीर में पित्त का संचय होने लगता है। इस संचित पित्त का शरद ऋतु में स्वाभाविक ही प्रकोप हो जाता है। इस समय यदि पचने में भारी, तले हुए, खट्टे या मसालेदार पदार्थों का सेवन किया जाय तो वे पित्त को दूषित कर अम्लपित्त व्याधि उत्पन्न करते है। इस प्रकार से दूषित, अत्यधिक अम्ल गुणयुक्त पित्त में आहार का संपूर्ण रूप से पाचन करने की शक्ति नहीं होती। अतः यह अपक्व आहार लंबे समय तक आमाशय में ही पड़ा रहता है। जिस प्रकार गर्मियों में अन्न-पदार्थ लंबे समय तक रखने पर सड़ने लगते हैं, उसी प्रकार आमाशय में पड़ा यह अनपचा आहार भी सड़ने लगता है। परिणामतः पेट में भारीपन, खट्टी डकारें आना, जी मिचलाना, छाती व कंठ में जलन होना, सिरदर्द, भ्रम (चक्कर आना), उलटी आदि अम्लपित्त के लक्षण उत्पन्न होने लगते हैं।

अम्लपित्त के कारण

विरुद्ध-दुष्टाम्ल-विदाहि-पित्तप्रकोपिपानान्नभुजो विदग्धम्।
पित्तं स्वहेतूपचितं पुरा यत्तदम्लपित्तं प्रवदन्ति तज्ज्ञः॥

(माधव निदान)

विरुद्ध (दूध के साथ फल, नमकीन अथवा खट्टे पदार्थों आदि का सेवन), दुष्ट (बासी, सड़े-गले), विदाही (शरीर में जलन उत्पन्न करनेवाले पदार्थ जैसे - अधिक मिर्च-मसालेयुक्त एवं तले हुए पदार्थ), अति उष्ण-स्निग्ध व पचने में भारी पदार्थों का सेवन करने से अथवा सतत उपवास रखने, मल-मूत्रादि के वेगों को रोकने से, मद्यपान, धूम्रपान, तंबाकू-गुटखा आदि नशीली वस्तुओं, फास्टफूड, कोल्डड्रिंक्स व बेकरी के पदार्थों तथा

दीर्घकाल तक अंग्रेजी दवाइयों के सेवन से अम्लपित्त व्याधि उत्पन्न होती है ।

इसके बाद भी यदि स्वाद-लोलुपता के कारण असंयमी होकर अहितकर पदार्थों का सेवन किया जाय तो यह व्याधि चिरस्थायी हो जाती है । आर्द्र (नमीयुक्त) हवावाले स्थानों में यह व्याधि विशेषरूप से पायी जाती है, जैसे - समुद्रतट स्थित प्रदेशों में ।

इस प्रकुपित पित्त के कारण रस-रक्त का वेग बढ़ जाता है, जिससे रक्तदाब में वृद्धि होती है । सामान्यतः उच्च रक्तदाब के पीछे अम्लपित्त ही प्रधान कारण होता है तथा पित्त का शमन होने पर रक्तदाब भी स्वाभाविक ही नियंत्रित हो जाता है । परंतु यदि उच्च रक्तदाब को नियंत्रित करने के लिए अथवा सिरदर्द, भ्रम आदि को मिटाने के लिए अंग्रेजी दवाइयों का सेवन किया जाय तो वे बीमारी कम करने के बजाय उसे बढ़ाने का ही कार्य करती हैं ।

'एस्पिरीन' (रासायनिक संज्ञा- एसिटिल सॅलिसिलिक एसिड) एक सर्वप्रचलित दर्दनाशक दवाई है । इसका प्रयोग सिरदर्द दूर करने के लिए धड़ल्ले से किया जाता है, परंतु यह अम्लपित्त व अल्सर का प्रधान कारण है । इसके अत्यधिक सेवन से आमाशय में छिद्र हो जाते हैं, जो कि प्राणघातक सिद्ध होते हैं ।

चिकित्सा

संक्षेपतः क्रियायोगो निदान-परिवर्जनम् ।

अर्थात् जिस रोग के जो हेतुरूप हों ऐसे आहार-विहार तथा देश का परित्याग और हितकर आहार-विहार का सेवन यही संक्षेप में उस रोग की चिकित्सा है । इसके द्वारा हम किसी भी रोग को अल्प प्रयास और घरेलू उपचारों से ही मिटा सकते हैं ।

हितकर आहार-विहार

अम्लपित्त में परिभ्रमण (घूमना-फिरना) विशेषरूप से लाभदायी है । भोजन में कड़वे, मधुर व कसैले पदार्थों का सेवन भी विशेष हितकर है । कड़वा रस अपक्व आहार का पाचन करता है । मधुर रस पित्त का शमन करता है व कसैला रस पित्त की बढ़ी हुई मात्रा को घटाता है ।

पथ्यकर (सेवन योग्य) पदार्थों में गाय का दूध व घी, आँवला, नारियल-पानी, अनार, अंगूर, मुनक्का, किशमिश, मिश्री, शहद, उबालकर ठंडा किया हुआ पानी, गेहूँ, जौ, मूँग, एक वर्ष पुराने साठी के चावल, परवल, पका पेठा, करेला, चौलाई, बथुआ, जीरा, धनिया, सौंफ आदि लाभदायी हैं ।

अहितकर आहार-विहार

तीखे, खट्टे, नमकीन पदार्थ विशेषरूप से असेवनीय हैं । इसलिए दही, खट्टी छाछ, टमाटर, नये चावल, अरहर व उड़द की दाल, तिल एवं मसालेयुक्त पदार्थों का सेवन न करें । असमय भोजन, दिन में सोना, रात्रि-जागरण, चिंता, शोक और भय -अम्लपित्त को बढ़ाते हैं । अतः इनसे बचें ।

औषधि-प्रयोग

इस व्याधि में आमाशय में प्रविष्ट आहार विदग्ध पित्त के संपर्क से दूषित हो जाता है । अतः उसे बाहर निकालकर आमाशय को शुद्ध करने हेतु विरेचन आवश्यक है । विरेचन अर्थात् औषध-द्रव्यों के उपयोग से शरीर के दोषों को मल के साथ बाहर निकालना । यह अम्लपित्त की सर्वश्रेष्ठ चिकित्सा है । शरद ऋतु में अनुभवी वैद्यों द्वारा विधिवत् विरेचन-कर्म कराने से वर्षभर पित्तजन्य व्याधियों से रक्षा होती है ।

* रात को ३ से ५ ग्राम स्वादिष्ट विरेचन चूर्ण अथवा त्रिफला चूर्ण काली द्राक्ष के काढ़े के साथ लेने से भी बहुत लाभ होता है । काढ़ा बनाने के लिए ८-१० ग्राम काली द्राक्ष ४-५ घंटे पानी में भिगोकर उबाल लें ।
* गले में अथवा छाती में जलन होने पर केवल किशमिश चबाकर खाने से अथवा मिश्री चूसने से भी लाभ होता है ।
* ताजे आँवलों के १० से २० मि.ली. रस में मिश्री व जीरा मिलाकर लेने से छाती की जलन, भ्रम, सिरदर्द, उलटी आदि में शीघ्र लाभ होता है ।

अम्लपित्त के रोगियों के लिए आँवले का मुरब्बा एवं आश्रम द्वारा निर्मित आँवला चूर्ण वरदानस्वरूप हैं । इनके सेवन से रोग-निवारण के साथ-साथ शरीर भी पुष्ट होता है ।

गुरुदेव ने नयी उमंग भर दी

मैं रसायन शास्त्र का प्रवक्ता हूँ। तीन साल पहले जयपुर (राज.) में मैंने पूज्य बापूजी से मंत्रदीक्षा ली थी। मंत्रविज्ञान सचमुच बहुत गजब का विज्ञान है। मंत्रजप करने से मुझमें अद्भुत सामर्थ्य और धैर्य आया है, स्मरणशक्ति भी बढ़ गयी है। अब तो मैं आसानी से विद्यार्थियों को पढ़ा सकता हूँ। मेरी एन.ई.टी., पी एच.डी (शोधकार्यों) में रुचि भी बढ़ गयी है। पूज्य बापूजी ने विज्ञान को अध्यात्म से जोड़कर 'साइंस एंड टेक्नोलॉजी' को एक नयी दिशा दी है और एक नयी उमंग व उत्साह भर दिया है। जब कभी मुझे ऐसा लगता है कि बुखार, सिरदर्द, जुकाम या खाँसी आदि होनेवाला है, तब मैं मंत्रजप करके ध्यान में गहरे गोते लगाते हुए विश्रांति पाता हूँ और पुनः स्वस्थ हो जाता हूँ। दीक्षा के बाद मेरे जीवन में दवाइयों की कोई गुलामी नहीं रही।

- नीरज अरोड़ा, मधुवन कालोनी, कृष्णानगर, मथुरा (उ.प्र.).

गुरुमंत्र और सत्संग बने उत्तम औषधि

मैंने पूज्यश्री से २४ फरवरी २००२ को मालेगाँव में दीक्षा ली। दीक्षा के पूर्व मुझे बी.पी. की बड़ी भयंकर तकलीफ थी। कभी-कभी भयंकर सिरदर्द भी होता था। दिन में २ बार बी.पी. की गोलियाँ खाती थी तो भी वह कम नहीं हो रहा था। अगर कभी गोली लेना भूल जाती तो बहुत तकलीफ होती थी। दीक्षा के बाद मैंने सब गोलियाँ बंद कर दीं और नियमित रूप से गुरुमंत्र का जप किया व पूज्यश्री की अमृतवाणी की पुस्तकें पढ़ीं। इससे अनायास ही चमत्कार हुआ, मेरा बी.पी. सामान्य हो गया। अब मुझे कोई भी तकलीफ नहीं है। दीक्षा के बाद से आज तक मैंने न सिरदर्द की, न बी.पी. की, न ही अन्य कोई दवाई ली, फिर भी मैं स्वस्थ हूँ। मुझे नया जन्म मिला है।

- मीना भास्कर दुसाने, मालेगाँव, जि. नासिक (महा.).

डॉ. बल राम जाखड़

राजभवन
भोपाल—462003

17 अगस्त, 2004

संदेश

हर्ष का विषय है कि संत श्री आसारामजी महाराज की प्रेरणा से संत श्री आसारामजी आश्रम द्वारा मासिक पत्रिका 'ऋषि प्रसाद' का प्रकाशन किया जा रहा है।

संत-महात्माओं का सान्निध्य भाग्यवान लोगों को ही मिलता है। ऋषि-मुनियों की वाणी से मनुष्य का लोक और परलोक सुधरता है। हमारा देश ऋषि-मुनियों का देश है। जब-जब हमारा समाज सांसारिक विकृतियों की ओर बढ़ा है, तब-तब हमारे ऋषि-मुनियों तथा साधु-संतों ने समाज को कुसंस्कारों से बचाने के लिए सात्त्विक जीवनशैली अपनाने का मार्गदर्शन दिया है। संत श्री आसारामजी महाराज ने भी युवाधन सुरक्षा, शास्त्रोपदेश, पौराणिक कथाएँ, योगयात्रा और शरीर-स्वास्थ्य जैसे विषयों पर अपना सत्संग-प्रसाद भारतीय समाज को दिया है। 'ऋषि प्रसाद' पत्रिका लोगों को कुसंग का त्याग कर सत्संग के मार्ग पर चलने की प्रेरणा देती है।

प्रभु से प्रार्थना है कि संत श्री आसारामजी महाराज दीर्घायु हों, ताकि उनके दिव्य ज्ञान की ज्योति समाज में चिरकाल तक आलोकित होती रहे।

अनंत शुभकामनाएँ...

(बलराम जाखड़)

('ऋषि प्रसाद' प्रतिनिधि)

चलो सखी वा ठौर को, जहाँ मिले सत्संग।
तीन ताप की होली हो, लगे ईश का रंग ॥

विश्वमानव के कल्याण की भावना से श्रीमद्भगवद्गीता, रामायण, श्रीमद्भागवत, वेदों, उपनिषदों, स्मृतियों तथा पुराणों के रहस्यमय, सारगर्भित उपदेशों को इस युग के लोगों की सामान्य मति-गति के अनुकूल बनाकर, इन सनातन सत्शास्त्रों का अमृत सभीके लिए सुलभ करनेवाले ब्रह्मनिष्ठ संत हैं परम पूज्य संत श्री आसारामजी बापू। जब वे श्रोताओं को उनके दैनिक जीवन से सम्बंधित दृष्टांत देकर शास्त्रों का कोई सूक्ष्म सिद्धांत समझाते हैं तो वह सिद्धांत जाने-अनजाने में उनके हृदय की गहराई तक पहुँचकर उनके स्मृतिपटल पर इतना दृढ़ हो जाता है जितना दृढ़ उन्हें चलने-बोलने का ज्ञान होता है।

पूज्य बापूजी देश के विभिन्न नगरों, महानगरों में पहुँचकर देशवासियों को अपने अलौकिक ज्ञानधन से लाभान्वित कर रहे हैं।

आज एक ओर जहाँ समाज में 'यह करना आपका कर्तव्य है, वह करना आपका दायित्व है' - इस प्रकार की विचारधारा कुछ ज्यादा ही फैल रही है, वहीं पूज्य बापूजी विश्वमानव को व्यक्तिगत, नैतिक, सामाजिक, राष्ट्रीय और आध्यात्मिक (या वास्तविक) कर्तव्य की सरल व्याख्या समझाकर उसे सजग कर रहे हैं कि ''हे मानव ! लौकिक कर्तव्य तो निभाओ परंतु इन कर्तव्यों को निभाते-निभाते अपने सुखस्वरूप का ज्ञान पाने का जो वास्तविक कर्तव्य है, उसके लिए भी प्रतिदिन थोड़ा समय निकालो। चालू व्यवहार में ही बीच-बीच में यह विचार करो कि आखिर, यह सब कब तक ?''

जन-जागृति की इसी शृंखला में अगस्त व सितंबर महीनों में उनका प्रवास गुजरात, कर्नाटक एवं महाराष्ट्र राज्य के विभिन्न क्षेत्रों में हुआ।

अमदावाद (गुज.) से ४० कि.मी. की दूरी पर स्थित धोलका ग्राम में २५ अगस्त को श्री सुरेशानंदजी का प्रवचन हुआ। २६ अगस्त को पूज्य बापूजी वहाँ पहुँचे। सर्वसुहृद सद्गुरुदेव को अपने बीच पाकर ग्रामवासियों ने कृतकृत्यता का अनुभव किया।

भाई-बहन का पवित्र त्यौहार रक्षाबंधन तथा श्रावणी पूर्णिमा का पर्व गोधरा आश्रम (गुज.) में संपन्न हुआ, जहाँ २८ व २९ अगस्त को देशभर से आये पूर्णिमा व्रतधारी भाई-बहनों का सैलाब उमड़ा। श्रावणी पूर्णिमा के दिन सप्तऋषियों - गौतम, भारद्वाज, विश्वामित्र, जमदग्नि, वशिष्ठ, कश्यप व अत्रि के साथ याज्ञवल्क्य एवं अरुंधती का स्मरण-वंदन किया गया। इस दिन इन महानुभावों के स्मरण की महिमा शास्त्रों ने गायी है।

१ व २ सितंबर को देवगढ़ बारीया, जि. दाहोद (गुज.) में आयोजित सत्संग-कार्यक्रम में पूज्य बापूजी ने सत्संग की महत्ता बताते हुए कहा कि ''जिन मनुष्यों के पास घर-गाड़ी, धन-दौलत तो हैं परंतु सत्संग नहीं है वे बहुत घाटे में हैं। लंकापति रावण के पास खूब धन-वैभव था लेकिन सत्संग के अभाव में उसकी दुर्गति हुई। सत्संग की महत्ता तो हरिभक्तों को ही पता होती है।''

२ सितंबर को यहाँ विशाल भंडारे का आयोजन हुआ, जिसमें आसपास के दरिद्रनारायणों ने हजारों की संख्या में भोजन-प्रसाद एवं जीवनोपयोगी वस्तुओं का लाभ लिया। इसके अतिरिक्त परम पूज्य बापूजी के संकेतानुसार बाढ़ के प्रकोप से अपनी गाय, भैंस, बकरी आदि खो बैठे गरीब-गुरबों को सहायता देने की व्यवस्था की गयी।

सूरत (गुज.) में ५ से ७ सितंबर तक श्रीकृष्ण-जन्माष्टमी का पर्व संपन्न हुआ। भगवान श्रीकृष्ण की तरह परमात्म-तत्त्व में प्रतिष्ठित पूज्य बापूजी जैसे महापुरुष के सान्निध्य में जन्माष्टमी महोत्सव मनाने का सद्भाग्य पानेवालों ने जो आनंद-माधुर्य का खजाना लूटा, उसे शब्दों में वर्णित करने में कोई भी लेखनी कैसे समर्थ हो सकती है ? यह तो अनुभव करने की ही बात है। लेखनी से अधिक सक्षम माध्यम है इस कार्यक्रम की विडियो सी.डी.। उसे प्राप्त कर आप सत्संग-सुख व दर्शनानंद का विशेष लाभ ले सकते हैं। परंतु धन्य तो वे गुरु के प्यारे हैं जो ऐसे दिव्य अवसरों पर पहुँच जाते हैं अपने सद्गुरुदेव के पास और पाते हैं वही दिव्य रस जो द्वापर युग में ग्वाल-गोपियों ने पाया था भगवान श्रीकृष्ण के सान्निध्य में।

इस पावन अवसर पर पूज्यश्री के करकमलों से 'चेतना के स्वर' (भाग-१ व २) विडियो डी.वी.डी., 'ज्ञानयोग, योग के रहस्य, तू कितना दयालु है !, मन का स्वभाव'- इन विडियो सी.डी. तथा 'ॐ ॐ प्रभुजी ॐ' इस ऑडियो

कैसेट का विमोचन हुआ।

'ॐ ॐ प्रभुजी ॐ... ॐ ॐ आनंद ॐ... ॐ ॐ प्यारेजी ॐ... ॐ ॐ मेरेजी ॐ...' - इस कीर्तन का माधुर्य एवं मस्ती कुछ निराली ही है। आप इस कीर्तन का अवश्य-अवश्य लाभ लें। जो लोग अपने मन को भगवान में लगाना चाहते हों और सभी तनावों एवं कष्टों से मुक्त होकर भगवद्रस पाना चाहते हों, उन्हें दिन में एक-दो बार इस कीर्तन को सुनते-सुनते भगवद्रस में सराबोर होकर झूमना चाहिए।

इस माह नांदेड़ (महा.) से पहले संपन्न हुए सभी सत्संग-कार्यक्रमों में सत्संग-वर्षा के साथ मेघ देवता की भी कृपा रही। इससे सभी स्थानों पर सत्संगियों ने अंतर्बाह्य शीतलता का अनोखा एहसास किया।

अम्बा माता के प्रसिद्ध तीर्थक्षेत्र कोल्हापुर (महा.) में ९ से ११ सितंबर की दोपहर तक पूज्य बापूजी की सत्संग-धारा प्रवाहित हुई। ऐतिहासिक दृष्टि से प्रसिद्ध इस शहर के कलाप्रेमी लोगों ने इस कार्यक्रम को अपने इतिहास में सुवर्णमय अक्षरों से अंकित किया।

भगवत्स्मरण की महिमा पर प्रकाश डालते हुए यहाँ पूज्य बापूजी ने कहा कि ''जो जिसका स्मरण करता है वह उसके गुणों को अपने में भरता है। स्मरण तीन प्रकार का होता है :

(१) क्रियाप्रधान (२) भावप्रधान (३) ज्ञानप्रधान

भगवान सत्स्वरूप, चैतन्यस्वरूप, आनंद-स्वरूप और सर्वव्यापक हैं - इस प्रकार भगवान के स्वरूप को समझकर चाहे कीर्तन करें, चाहे काम करें अथवा चुप बैठें तब भी परमात्मा का स्मरण होता रहेगा।

आप भगवान का स्मरण करोगे तो भगवान आपका स्मरण करेंगे क्योंकि वे चैतन्यस्वरूप हैं। आप पैसों का, बँगले का स्मरण करोगे तो जड़ पैसों को, जड़ बँगले को तो पता नहीं है कि आप उनका स्मरण कर रहे हो। आप गाड़ी का स्मरण करोगे तो वह अपने-आप नहीं मिलेगी लेकिन भगवान का स्मरण करोगे तो वे स्वयं आकर मिलेंगे। शबरी ने भगवान का स्मरण किया तो वे पूछते-पूछते शबरी के द्वार पर आ गये। **भावग्राही जनार्दनः...** मीरा ने स्मरण किया तो जहर अमृत हो गया। वह हृदयेश्वर कब, किस रूप में मिले इसका वर्णन धरती के सब वैज्ञानिक और धार्मिक लोग मिलकर भी नहीं कर सकते।''

११ सितंबर की दोपहर को कोल्हापुर में सत्संग-कार्यक्रम की पूर्णाहुति हुई और उसी शाम को शुरू हुआ बेलगाम (कर्नाटक) का सत्संग-कार्यक्रम।

१२ सितंबर को यहाँ पूज्यश्री के करकमलों से 'गुरुपूर्णिमा संदेश, जीवन विकास, हमारे आदर्श, सदा दिवाली, जीवन रसायन, अलख की ओर, जीवन झाँकी' आदि कन्नड़ पुस्तकों का विमोचन हुआ।

दक्षिण भारत के इस क्षेत्र के निवासियों की काफी दिनों से माँग थी कि हमें भी बापूजी के सत्संग-अमृत का लाभ मिले। इस कार्यक्रम से उन्होंने इस दिव्य अमृत का स्वाद तो चखा परंतु पूज्य बापूजी के पावन सत्संग-सान्निध्य में जीवन की परम उन्नत राह पाकर उनकी ज्ञानपिपासा और बढ़ गयी। अब वे प्रतीक्षा करने लगे हैं अगले सत्संग-कार्यक्रम की...

मानवीय मस्तिष्क की अपार क्षमता का बोध कराते हुए यहाँ पूज्यश्री ने कहा : ''१० अरब न्यूरॉन्स आपके मस्तिष्क में हैं। आज वैज्ञानिक जिन्हें न्यूरॉन्स बोलते हैं, ऋषियों ने उन्हें सूक्ष्म कोश कहा है। एक-एक कोश सुविकसित हो तो वह एक-एक ग्रह-नक्षत्र का प्रतिनिधित्व कर सकता है, उस पर नियंत्रण कर सकता है। कितनी क्षमताएँ छुपी हैं इस मानवीय मस्तिष्क में !''

१३ सितंबर को पूज्यश्री का कर्नाटक की राजधानी बैंगलोर में शुभागमन हुआ। यहाँ पूज्यश्री ने श्री सत्य साँई बाबा से भेंट की एवं सत्संग भी किया।

१७ सितंबर को रात्रि ७ बजे पूज्यश्री इंद्रायणी नदी के पावन तट पर स्थित आलंदी आश्रम (जि. पूना, महा.) में पहुँचे।

१९ व २० सितबर ये दो दिन पूना (महा.) के सत्संगियों के नाम रहे। अहमदनगर (महा.) वासियों को पूज्यश्री का केवल डेढ़ दिन का सत्संग-सान्निध्य प्राप्त हुआ परंतु इन आत्मनिष्ठ संत के आत्मानुभवरूपी मक्खन को छूकर निकली अमृतवाणीरूपी छाछ का एक चुल्लू ही संसार के त्रितापों से तप्त मानव की जन्मों की थकान मिटाकर उसे नया उत्साह, नयी उमंग प्रदान करनेवाला साबित होता है। २१ व २२ सितंबर के तीन सत्रों में कुछ ऐसा ही साबित हुआ, विठ्ठलनगरवासियों ने भगवद्रस का छककर पान किया। आत्मरामी सद्गुरुओं को जीवात्मा और परमात्मा के बीच का सेतु बताते हुए आत्मानंद में मस्त वेदांतनिष्ठ परम पूज्य बापूजी ने कहा :

''आसमान में क्या होते हैं ? बादल। बादलों में क्या होता है ? हाइड्रोजन और ऑक्सीजन। किंतु बरसात तब तक नहीं होती, जब तक उत्प्रेरक (कैटेलिक एजेंट) बिजली नहीं होती। वैज्ञानिकों ने बिजली चमकने को उत्प्रेरक कहा। हाइड्रोजन और ऑक्सीजन तो हैं किंतु जब तक बादलों के बीच बिजली नहीं चमकती तब तक बरसात के रूप में पानी

नहीं बरसता। ऐसे ही जीवात्मा परमात्मा का अंश है और उसके साथ ही है परंतु इन दोनों के बीच तार जोड़नेवाले सद्गुरु के बिना आत्मरस की वृष्टि नहीं होती।''

२२ सितंबर को नेवासा में ऊँचा मंच बनाकर हजारों की संख्या में लोग राह देख रहे थे कि पूज्य बापूजी इस रास्ते से गुजरेंगे। पूज्यश्री अहमदनगर से नेवासा, बजाजनगर होते हुए औरंगाबाद आश्रम पहुँचे, जहाँ बिना पूर्व नियोजन के सत्संग-दर्शन का सौभाग्य स्थानीय शिष्य-समुदाय को मिला।

२४ से २६ सितंबर तक नांदेड़ (महा.) में सत्संग-कार्यक्रम संपन्न हुआ। सिक्खों की काशी कहलानेवाली इस धरा पर पूज्यश्री का यह प्रथम आगमन था। यहाँ के गुरुभक्तों, सत्संगियों के अभूतपूर्व सैलाब ने विशाल व्यवस्था को अत्यंत नन्हा बना दिया। उनका सत्संग-प्रेम इतना अधिक था कि उन्होंने इन विश्ववंदनीय, ब्रह्मनिष्ठ संत के हृदय में अपनी जगह बना ली। महानता के शिखर पर पहुँचने की अनेक युक्तियाँ संत शिरोमणि ने यहाँ बतायीं। उन्होंने कहा : ''महानता प्राप्त करने के लिए चार सद्गुण आवश्यक हैं : समता, प्रसन्नता, नम्रता और उदारता। ये चार सद्गुण जिसमें जितनी ज्यादा मात्रा में होंगे, वह व्यक्ति उतना ही अधिक महान होगा। यदि वे किसीमें ५-१०% हैं तो वह सज्जन है। यदि ६०% हैं तो वह देवपुरुष है। यदि ८०-९०% हैं तो वह पृथ्वी पर का चलता-फिरता फरिश्ता है और १००% हैं तो साक्षात् नारायणस्वरूप हो गया वह तो! भगवान श्रीकृष्ण को देख लो। युद्ध के मैदान में भी उनके अधरों द्वारा बंसी बज रही है! रामजी को देख लो। रामराज्य के बदले राम-वनवास हो गया फिर भी उनके चेहरे पर कोई शिकन नहीं! उनके अंतरंग में शांति-समता का रस छलक रहा है।

आप भी अपने हृदय को इन सद्गुणों से सुशोभित करें और अपनी वास्तविक महानता की ओर अग्रसर हों।''

यहाँ पूज्यश्री द्वारा 'जीवन सौरभ, अवतार लीला' इन दो मराठी पुस्तकों का विमोचन हुआ।

२८ सितंबर को प्रोष्ठपदी पूर्णिमा के अवसर पर अमदावाद आश्रम में दर्शन-सत्संग का कार्यक्रम संपन्न हुआ।

विभिन्न स्थानों पर हुए सत्संग-कार्यक्रमों में पूज्य बापूजी ने मानव-जीवन से सम्बंधित अनेक गुत्थियों पर अपनी भगवद्-अनुभव से संपन्न ओजस्वी वाणी में प्रकाश डाला और उनका सरल हल भी बताया। धन्य हुए नांदेड़वासी, अहमदनगरवासी! पूना के प्यारों के हृदय में तो ज्ञानपिपासा ही जग गयी। बेलगाम व कोल्हापुर वासियों के भाग्य का तो कहना ही क्या! सभी कृतकृत्य हो गये।

धनभागी हैं वे लोग जो समाज और महापुरुष के बीच सेतु बनकर ईश्वर का दैवी कार्य करने में तत्पर हो जाते हैं।

गोधरा में बापूजी के सत्संग में आनेवाले श्रद्धालुओं को रिक्शाचालकों द्वारा लूटा गया!

સંદેશ गोधरा, ३१ अगस्त २००४ : गोधरा (गुज.) में रक्षाबंधन पर्व के अवसर पर आयोजित संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-कार्यक्रम में आनेवाले साधकों को रिक्शाचालकों ने खूब लूटा, जिससे उनमें भारी रोष व्याप्त है। गोधरा में रिक्शाचालकों की दादागिरी के इस प्रकार के प्रसंग प्रतिदिन हो रहे हैं, जिनमें रिक्शाचालक मीटर के अनुसार किराया नहीं लेते और रिक्शाओं में मीटर भी नहीं होते।

संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग में गोधरा ही नहीं, अमदावाद, बड़ौदा, सूरत, दिल्ली तक के साधकों की भीड़ उमड़ी थी।

नियमानुसार रेलवे स्टेशन से सत्संग-स्थल तक आने हेतु रिक्शे का किराया २० से २५ रु. होता है, जबकि रिक्शाचालक साधकों से ३०-३० रु. लेकर खुली लूटपाट मचाकर उन्हें परेशान कर रहे हैं। उनके द्वारा साधकों के साथ उद्दंड व्यवहार किये जाने की जानकारी भी मिली है।

अनेक साधकों ने तो सत्संग-स्थल तक पैदल जाकर ही पूज्य बापूजी के सत्संग का लाभ लिया।

इसके अतिरिक्त संत श्री आसारामजी बापू का निवास-स्थल गोधरा के पास छारीया गाँव के फार्म हाउस की कुटीर में रखा जाने से साधक वहाँ भी जाते थे। वहाँ जाने के लिए रिक्शाचालक प्रति व्यक्ति ५० रु. के हिसाब से ७-८ साधकों को रिक्शे में बिठाकर उनसे ३५० से ४०० रु. वसूल करते थे। सतत २-३ दिन तक ऐसी लूट मची तो साधक घबरा गये। उन्होंने आज कथा-समाप्ति के बाद पूज्य बापूजी को इसकी जानकारी दी तो उन्होंने इस धोखाधड़ी पर खेद व्यक्त किया।

इसके अलावा शहर में भी मीटर पद्धति से किराया नहीं लिया जाता। रेलवे स्टेशन से बाजार में बस स्टैंड आदि जगहों पर आने-जाने का मुँहमाँगा किराया वसूल किया जाता है और उद्दंडता भरे व्यवहार की घटनाएँ भी आये दिन होती रहती हैं। सम्बंधित अधिकारी इन दुगना-तिगुना किराया लेनेवाले रिक्शाचालकों पर कड़ी कार्यवाही करेंगे या नहीं ?

'बाहर से बारिश खूब भिगा रही है और भीतर से भीग रहे हैं भगवद्रस से। क्यों उठें और कहाँ जायें ?
हम मुश्किल से ठीक जगह पहुँच पाये हैं। बरसने दो मेघों को... बैठे हैं गुरुचरणों में।' – कोल्हापुर (महा.) के सत्संगी।

पूर्व हो या पश्चिम, उत्तर हो या दक्षिण – सर्वत्र माँग है सच्चे आनंद एवं शांति की...
इसका प्रत्यक्ष उदाहरण है कर्नाटक के बेलगामवासियों की उमड़ी यह विशाल जनमेदनी।

सत्संग में ऐसा उत्तम ज्ञान मिलता है कि आध्यात्मिक, नैतिक व लौकिक उन्नति दिन-दूनी रात-चौगुनी होती जाती है,
इस बात से सुपरिचित पाये जा रहे हैं पूना (महा.) के सद्भागी सत्संगी।

प्रार्थना इतनी है गुरुवर आपसे, दे दो विद्या विनय विवेक हमें। बल बुद्धि स्मृति का हो वर्धन, हिय में प्रभुप्रीति का अंकुर जगे ॥
नांदेड़ (महा.) के सत्संग-कार्यक्रम में विनम्र भाव से प्रार्थना कर पूज्य बापूजी की आरती उतारते हुए
आश्रम-संचालित बाल संस्कार केन्द्रों के बच्चे व विविध विद्यालयों के विद्यार्थी।
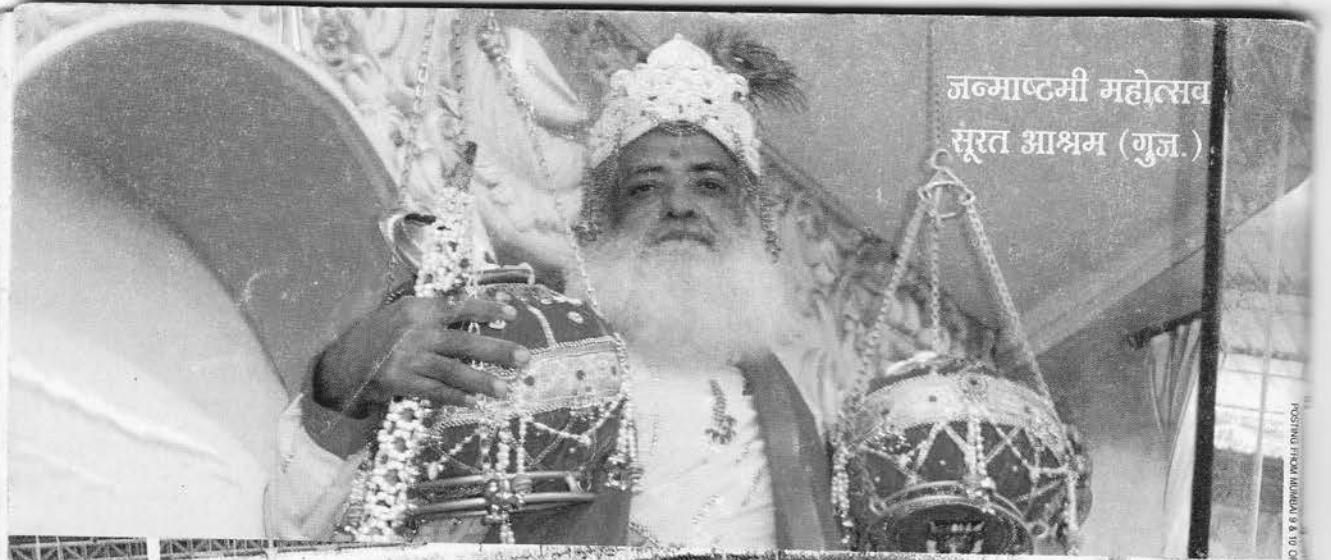
जन्माष्टमी महोत्सव
सूरत आश्रम (गुज.)

सूर्यपुत्री तापी का तट हो... जनसमुदाय उमड़ा विराट हो... गुरुवर ने पहना कृष्णमुकुट हो...
इस सुंदर सलोनी सूरत में प्रकटी बंसीधर की मूरत हो... इन नयनों से अमृतवर्षा सतत हो...
ज्ञानधारा श्रीमुख से निःसृत हो... आनंदोत्सव की घड़ियाँ प्रत्यक्ष हों... तो नीरस मन भी क्यों न सरस हो ?

आश्रम द्वारा देवगढ़ बारीया, जि. दाहोद (गुज.) में आयोजित भंडारे में भोजन-प्रसाद पाते हुए दरिद्रनारायण।

POSTING FROM MUMBAI 9 & 10 OF EVERY MONTH. ❊ FOREIGN POSTING 5 & 6 OF EVERY MONTH FROM AIRPORT PO. - 400099. ❊ DELHI REGD. NO. DL-11513/2003-05 WITHOUT PRE-PAYMENT LIC. NO.-U(C) 232/2003-05 POSTING FROM DELHI 5 & 6 OF EVERY MONTH.